श्रीचैतन्य-सम्प्रदाय

(श्रीगौड़ीय–वैष्णव सम्प्रदाय)

गौड़ीय वैष्णव–दर्शन से अनुवादित

• डॉ. नित्यानन्ददास

• श्रीश्रीकृष्णचैतन्यनित्यानन्दौ जयतः •

श्रीचैतन्य-सम्प्रदाय

(श्रीगौड़ीय–वैष्णव सम्प्रदाय)

श्रीराधागोविन्दनाथ

एम.ए., डी.लिट.–पराविद्याचार्य, विद्यावाचस्पति,
भागवतभूषण, भक्तिसिद्धान्तरत्न, भक्तिभूषण, भक्तिसिद्धान्त–भास्कर

रचित

गौड़ीय वैष्णव–दर्शन से अनुवादित

संकलनकर्त्ता

डॉ. नित्यानन्ददास

प्रकाशक

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, श्रीधाम वृन्दावन

प्रकाशक

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल
श्रीधाम वृन्दावन

प्रथम संस्करण

५०० प्रतियाँ
श्रीपाद रूपगोस्वामि तिरोभाव तिथि
दिनांक ११ अगस्त, सन् २०००

न्योछावर

तीस रुपये

मुद्रक

चित्रलेखा
बागबुन्देला, वृन्दावन–281121
दूरभाष : (0565) 442415, 443415

दो शब्द

• • •

बीसवीं शताब्दी के बंगाल प्रदेशीय श्रीगौड़ीयवैष्णव साहित्यकारों की वरेण्य श्रेणी के अनन्यतम साहित्यकार माने जाते हैं कलकत्ता निवासी परमभागवत डॉ० श्रीराधागोविन्दनाथ। उनके द्वारा सम्पादित श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीचैतन्यभागवत की सुन्दर, सरस अद्वितीय विशद व्याख्याओं को देखकर बंगदेशवासी जहाँ मुक्तकण्ठ से कहते हैं "राधागोविन्दनाथ मुखे वक्ता श्रीचैतन्य" वहाँ ब्रजमण्डल का विद्वद्प्रवर गौड़ीयवैष्णव समुदाय भी उनकी अप्रतिम प्रतिभाशाली प्रगाढ़ ज्ञानपूर्ण व्याख्या–शैली एवं श्रीमन्महाप्रभु कृपाभिषिक्त लेखनी के मन्दाकिनी प्रवाह में सराबोर हो उठता है।

गौरगत–प्राण श्रीहरिबाबा, दावानल कुण्ड वृन्दावन में श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीनामसंकीर्तन–प्रचार तथा श्रीगौरांगलीलानुकरण रस आस्वादन में अपना जीवन समर्पित कर चुके थे। उनके ह्रदय में "गौड़ीयवैष्णव–दर्शन" सम्बन्धी सर्वांगीण साहित्य का अभाव चिरकाल से खटकता रहता था। दैवयोग कहो या भक्तवाञ्छाकल्पतरु श्रीगौरांग महाप्रभु की कृपा–प्रेरणा, एक दिन कलकत्ता निवासी श्रीअरुणकुमार घोष पूज्य बाबा के दर्शन करने उनके आश्रम पर गये। बात–बात में श्रीहरिबाबा ने एक फाउन्टेन पैन घोष जी को देते हुए कहा, "यह पैन मेरी ओर से जाकर डा० राधागोविन्दनाथ को दीजिए और निवेदन कीजिएगा कि वे श्रीमहाप्रभु का स्मरण कर "गौड़ीयवैष्णव–दर्शन" का सम्पादन करें। उसके द्वारा श्रीमहाप्रभु प्रवर्त्तित सम्प्रदायानुगत समुदाय का सर्वतोभाव से महत् उपकार साधित होगा तथा एक चिर अभाव की पूर्ति होगी।"

पूज्य श्रीहरिबाबा के द्वारा प्रेषित उस पैन सहित सन्देश को श्रीमहाप्रभु की आज्ञा जानकर आचार्य श्रीराधागोविन्दनाथ उस शुभ कार्य में जुट गये। उन्होंने "गौड़ीय वैष्णव दर्शन" नामक सप्त–पर्वात्मक एक विशाल ग्रन्थरत्न छः वर्ष अनथक परिश्रम करके पाँच खण्डों में प्रस्तुत किया। श्रीमहाप्रभु कृपा से गौड़ीयवैष्णव सम्प्रदाय–साहित्य को अभूतपूर्व महिमा–मण्डित कर साधक

जगत् को कृतार्थ कर दिया। सर्वोपनिषद्–वेदान्तसूत्र–श्रीभागवतीय सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित तथा श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके अनुयायी सम्प्रदायाचार्यों द्वारा निर्णीत पारमार्थिक तत्त्वों से परिपूर्ण इस प्रकार की चमत्कारी दार्शनिक रचना पहले किसी को देखने को न मिली थी।

परम सम्मानीय डॉ० श्रीराधागोविन्दनाथ ने इस ग्रन्थ की भूमिका के (अनुच्छेद ४०) में और अन्तिम पाँचवे खण्ड 'रसतत्त्व' के बाद 'परिशिष्ट' में "माध्व सम्प्रदाय एवं गौड़ीय सम्प्रदाय" के सम्बन्ध में पुंख्यानुपुंख्य अनुसन्धानपूर्वक विशद् आलोचना प्रकाशित की है। यह प्रसंग गौड़ीयवैष्णव समाज के लिए अपेक्षाकृत जानने योग्य है। अधिकतर बंगाली गौड़ीयवैष्णव भी उस प्रसंग में आलोच्य तथ्यों से अपरिचित हैं, हिन्दी–भाषीय गौड़ीयवैष्णवों के विषय में तो कहना क्या ?

हिन्दी भाषी गौड़ीय वैष्णव समाज के निमित्त सम्प्रदाय के वास्तव गंभीर सिद्धान्तों की जानकारी के लिए मैंने ग्रन्थ–लेखक के मूल–प्रसंगों का अक्षरशः, कहीं आंशिक अनुवाद करने का किंचित् प्रयास किया है। अति विस्तृत संस्कृत मूल आदि कुछ अंशों को ग्रन्थविस्तारभय से छोड़ भी दिया है।

मेरा विश्वास है यदि गौड़ीयवैष्णवजन इसका निरपेक्ष मनोनिवेश पूर्वक आद्योपान्त अनुशीलन करेंगे तो श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव द्वारा प्रवर्त्तित चैतन्यसम्प्रदाय के वैशिष्ट्य को जान सकेंगे। विशेषतः "गौड़ीय–सम्प्रदाय माध्वसम्प्रदाय की एक शाखा है अथवा उसके अन्तर्भुक्त है"–इस प्रकार की निराधार भ्रान्त धारणा का अवश्य निरसन हो जाएगा।

वैष्णवदासानुदास

— डॉ. नित्यानन्ददास

• • •

आचार्य श्रीराधागोविन्दनाथ का संक्षिप्त जीवन-परिचय

• • •

आचार्य श्रीराधागोविन्दनाथ का जन्म वसुदुहिता ग्राम, थाना–बेगमगंज, जिला नवाखाली में दिनांक ३ फरवरी सन् १८७८ में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्रीचन्द्रमणिनाथ और माताजी का नाम श्रीमती व्रजसुन्दरी देवी था। इन्होंने सन् १८६२ में गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर लिया था।

आरम्भिक शिक्षा में इन्होंने नवाखाली मिडिल इंग्लिश स्कूल से मिडिल इंग्लिश परीक्षा पास की। ढाका विश्वविद्यालय से सन् १६०० में एण्ट्रेंस पास की। जगन्नाथ कालेज से सन् १६०२ में एफ. ए. परीक्षा दी। भाकर जनरल असेम्बली कलकत्ता से सन् १६०४ में बी. ए. गणित शास्त्र में आनर्स प्राप्त कर उत्तीर्ण हुए तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय से सन् १६०५ में गणितशास्त्र में एम. ए. परीक्षा देकर उत्तीर्ण हुए। एक प्रतिभाशाली छात्र होने के नाते प्रायः प्रथम श्रेणी, छात्रवृत्ति तथा विशेष सम्मान प्राप्त करते हुए इन्होंने सन् १६०५ तक अपना अध्ययनकाल पूरा किया।

तत्पश्चात् आपका अध्यापक–जीवन आरम्भ हुआ। सेण्ट्रल कालेज, कलकत्ता में प्राध्यापक (प्रोफेसर) पद पर नियुक्त हुए। सन् १६०६ से १६०८ तक दो वर्ष वहाँ अध्यापन कराया। फिर कोमिला विक्टोरिया कालेज में २० वर्ष (सन् १६२८) तक गणित–शास्त्र के सीनियर प्रोफेसर रहे एवं दो वर्ष तक वाईस प्रिंसिपल रहने के बाद सन् १६४३ तक उसी कालेज में प्रिंसिपल पद पर रहे आये, अर्थात् ३५ वर्ष उसी कालेज की स्तुत्य–सेवा की। उसके पश्चात् नवाखाली, चौमुहानी कालेज में सन् १६४६ तक प्रिंसिपल पद सम्भाला और १६४७ में आपने अवकाश प्राप्त किया।

शिक्षा–संस्थाओं की सच्ची सेवा करने के अतिरिक्त अनेक संस्थाओं के अधिवेशनों में अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। इनके द्वारा शिक्षा सम्बन्धी अनेक पुस्तकें (Text Books) लिखी गयीं। आई. ए. कोर्स के लिये Solid

Geometry & Comic Section पुस्तक कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत की गयीं।

इनके द्वारा अंग्रेजी में लिखी "Sri Chaitanya Movement Of Bengal" का प्रकाशन "The Cultural Heritage of India" ग्रन्थ में रामकृष्ण मिशन के द्वारा किया गया। The Achintya Bhedabheda School of Vedanta और "The Yogis of Bengal" दो प्रबन्ध १६१० में प्रकाशित हुए। आचार्य श्रीराधागोविन्दनाथ "श्रीगौरांग", "साधना", 'विष्णुप्रिया' आदि पत्रिकाओं के प्रधान सम्पादक रहे। "प्रवासी", "भारतवर्ष" "योगि सम्मिलिनी" आदि मासिक पत्रिकाओं में तथा दैनिक "आनन्द बाजार" पत्रिका में इनके अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण प्रबन्ध छापे जाते रहे।

यह तो रहा इनका शिक्षा अध्ययन–अध्यापन सेवा–विशिष्ट अतुलनीय प्रशंसनीय व्यक्तित्व, किन्तु इनका परम उज्ज्वलतम स्वरूप तो चमक उठा इनके द्वारा जब पारमार्थिक बंगला गौड़ीयवैष्णव–साहित्य प्रस्तुत किया गया। आश्चर्य की सीमा न रही, गणित–शास्त्र के उच्चतम मनीषी होते हुए इन्होंने अतुलनीय वैष्णवधर्म की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

इनके परमार्थ–परमगुरु थे श्रीमन्नित्यानन्दवंशावतंस नवद्वीप धाम निवासी सुप्रसिद्ध भागवत–व्याख्याता प्रभुपाद श्रीप्राणगोपाल गोस्वामी, तथा दीक्षागुरु थे गोस्वामी प्रभुपाद के प्रधान शिष्य श्रीराधागोविन्द शर्मा अधिकारी जी महाराज। अतएव श्रीहरिगुरु कृपा से इनकी रुचि नवद्वीप–विहारी श्रीश्रीनिताई– गौर महाप्रभु सम्बन्धी साहित्य के अनुशीलन प्रणयन में स्वाभाविक थी। इन्होंने 'श्रीगौरतत्त्व', "श्रीगौरकरुणा वैशिष्ट्य", "जीवतत्त्व" आदि छोटे–छोटे किन्तु अतिशय महत्त्वपूर्ण कई एक ग्रन्थों की रचना की। यथा समय इनके द्वारा रचित विशाल ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित होने पर वैष्णव साहित्य जगत् में रोमांचकारी चमत्कृति उत्पन्न हो उठी। इन्होंने निम्नलिखित साहित्य बंगभाषा में प्रणयन किया–

१. श्रीचैतन्यचरितामृत (गौरकृपातरंगिणी टीका संवलित)
   ६ खण्ड (पृष्ठ ३६६०)

२. श्रीचैतन्यभागवत (निताईकरुणा कल्लोलिनी टीका संवलित)
   ६ खण्ड (पृष्ठ २३३६)

३. महाप्रभु श्रीगौरांग (पृष्ठ १२७०)

४. गौड़ीयवैष्णव दर्शन ५ खण्ड (पृष्ठ ३८०८)

५. श्रीमद्भागवत (गौरकरुणा–मन्दाकिनी टीका संवलित) भूमिका, ३६० पृष्ठ, प्रथमस्कन्ध–६६४ पृष्ठ, द्वितीय स्कन्ध, ५१० पृष्ठ। सब ग्रन्थ क्राउन साईज में प्रकाशित हुए। अस्वस्थ रहने पर भी भक्तों के अनुरोध पर इन्होंने श्रीभागवत दशम स्कन्ध की टीका लिखनी आरम्भ की, जो ३० वें अध्याय के ८वें श्लोक तक ही लिख पायी। उपर्युक्त अनवद्य गौड़ीय वैष्णव साहित्य ही आचार्य श्रीराधागोविन्दनाथ के महामहिमान्वित व्यक्तित्व तथा, कृतित्व का उज्ज्वल कीर्त्तिस्तम्भ है।

ऐसी महान् मनीषी वैष्णव विभूति को अनेक बड़ी–बड़ी संस्थाओं ने भी समय–समय पर श्रेष्ठतम उपाधियों से विभूषित किया, जिनका विवरण इस प्रकार है–

१. नवद्वीप पण्डित मण्डली द्वारा–''विद्यावाचस्पति''

२. माध्वगौड़ेश्वर पीठ वृन्दावन द्वारा–''भक्तिसिद्धान्तरत्न''

३. सिंथी वैष्णव सम्मिलनी, २४ परगना द्वारा–'भागवतभूषण''

४. श्रीराधाकुण्ड–गोवर्धन के वैष्णव समाज द्वारा–''भक्तिभूषण''

५. वैष्णव थियोलोजिकल यूनिवर्सिटी, वृन्दावन द्वारा–''डी. लिट्''

६. पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा (१६५६–६०)–''रविन्द्र पुरस्कार''

७. कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा– (१६६०) ''डी. लिट्'' तथा

८. रवीन्द्र भारती कलकत्ता द्वारा–(सन् १६७०) ''डी. लिट्''

इस प्रकार अनेकानेक सम्मानात्मक उपाधियों के द्वारा विभूषित आचार्य श्रीराधागोविन्दनाथ का परिचय हमें प्राप्त होता है कि गौड़ीयवैष्णव सम्प्रदाय में कितने प्रतिष्ठित एवं प्रामाणिक महान व्यक्तित्व कृतित्व के वे धनी थे।

उनके साहित्य के सम्बन्ध में विद्वत् समाज के विश्वविख्यात आचार्य मनीषियों के अनेक बहुमूल्य अभिमत प्राप्त हैं। उन अभिमतों को यहाँ उल्लेख करना तो असम्भव है परन्तु कुछ एक अभिमत–प्रदाता महानुभावों के नामों का उल्लेख किया जा रहा है, ताकि उनकी साहित्य–सम्पद की उज्ज्वल गरिमा का आज के पण्डितमानी लोग अनुमान कर सकें।

(१) प्रभुपाद श्रीप्राणगोपाल गोस्वामी 'सिद्धान्तरत्न', (२) प्रभुपाद श्रीराधारमण गोस्वामी वेदान्तभूषण, (३) महामहोपाध्याय पं. श्रीभागवत कुमार गोस्वामी एम. ए. दर्शनाचार्य। (४) महामहोपध्याय पं. श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण काशी विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग–अध्यक्ष, (५) डा. महानामव्रत ब्रह्मचारी, (६) श्रीदीनशरण दास बाबाजी, वृन्दावन, (७) श्रीप्रियाचरण दास बाबाजी, गोवर्धन, (८) अध्यापक श्रीकृष्णचरणदास जी केशीघाट, वृन्दावन, (६) श्रीकृष्णदास जी भक्तितीर्थ, सारस्वत गौड़ीयासन, वृन्दावन, (१०) श्रीहरेकृष्णजी मुख्योपाध्याय, साहित्यरत्न, कूड़मिठा वीरभूम, (११) माध्वगौड़ेश्वराचार्य श्रीनृसिंहदास गोस्वामी, भागवतभूषण राधारमण मन्दिर, वृन्दावन। (१२) श्रीवंकिमचन्द्रजी सेन, भक्तिभारती भागीरथी, कलकत्ता, (१३) श्रीसतीशचन्द्रजी चट्टोपाध्याय, कलकत्ता विश्वविद्यालय दर्शन विभाग अध्यक्ष। भागवताचार्य श्रीप्राणकिशोर गोस्वामी प्रभुपाद, हावड़ा इत्यादि।

इस प्रकार सैंकड़ों विश्वविख्यात विद्वानों के अभिमत आचार्य श्रीराधागोविन्दनाथ महोदय को उनके सर्वांग प्रामाणिक साहित्य विशेषकर "गौड़ीय–वैष्णव दर्शन" के सम्बन्ध में प्राप्त हुए। उनमें से कुछ एक सर्वसम्मानीय मनीषियों के नामों का यहाँ उल्लेख किया गया है। कलकत्ता कारपोरेशन ने भी ''वासारोड साउथ फर्स्ट लेन'' मार्ग का नामकरण ''राधागोविन्दनाथ सरणी'' करके इनकी स्मृति–कीर्ति को अक्षुण्ण कर दिया है।

परम भागवत आचार्य महोदय ने गौड़ीयवैष्णव साहित्य का अनुपम अवदान प्रदान किया है। उन्होंने १ दिसम्बर सन् १६७० के दिन ६३ वर्ष की आयु में लीला संवरण कर भगवद्धाम में प्रवेश किया। नित्य–शाश्वत परमार्थवस्तु के महावदान के साथ उनका व्यक्तित्व भी अमरत्व को प्राप्त हो गया। गौड़ीय वैष्णव समाज उनके इस पारमार्थिक उपकार के लिये नित्य ऋणी रहेगा।

डॉ. श्रीराधागोविन्दनाथ द्वारा सम्पादित श्रीचैतन्यचरितामृत की "गौरकृपा तरंगिणी टीका" सहित निम्नलिखित तीन ग्रन्थों का हिन्दी में प्रकाशन किया जा चुका है।–

- शिक्षाष्टक, (सन् १६६६) श्रीराधामाधव सेवा संस्थान, गोरखपुर
- आत्माराम आकर्षक हरि के गुण, (सन् १६७२) श्रीकृष्णजन्म स्थान सेवा संघ, मथुरा
- श्रीसनातन शिक्षा, (सन् १६७६) श्रीकृष्णजन्म स्थान सेवा संघ, मथुरा

सहर्ष निवेदन

• • •

डॉ० नित्यानन्द दास द्वारा सम्पादित ''श्रीचैतन्यसम्प्रदाय'' पुस्तक के प्रकाशित होने के शुभ संकल्प को जानकर अति हर्ष हुआ। डॉ० नित्यानन्ददास बहुत पहले से जानते हैं कि मेरा श्रीयुत डॉ० राधागोविन्दनाथ के साथ घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। उनके द्वारा सम्पादित श्रीचैतन्यचरितामृत की भूमिका के कई एक अंशों का अनुवाद मेरे द्वारा हिन्दीभाषा में ''श्रीमद्वैष्णवसिद्धान्तरत्न संग्रह'' नाम से सन् १९५३ में प्रकाशित हुआ। उक्त पुस्तक को देखकर वे परम उदार मनीषी आचार्य महोदय मुझ पर इतने रीझे कि उन्होंने समस्त बहुमूल्य साहित्य–सम्पदा इस दीन–हीन को उपहार रूप में भेज दी। उनकी महान् उदारता एवं अहैतुकी कृपा के निमित्त कृतज्ञता ज्ञापन के लिये भी मुझे शब्द कहीं न मिले। अत्यन्त खिन्न ह्वदय के भावाश्रु उनके चरणों में अर्पण करने का दुस्साहस करते हुए इतना अवश्य निवेदन किया–''हाय ! इस अनुपम साहित्य–सम्पदा से हिन्दी–समाज वंचित रहा एवं करुणावतार श्रीमन्महाप्रभु के पावन चरित्रों तथा सिद्धान्तों के प्रगाढ़ ज्ञान परिचय से कोसों दूर रह गया। हिन्दी भाषी गौड़ीय समाज के दुर्भाग्य का क्या कहना ?'' मेरी ह्वदयवेदना का अनुभव कर उन्होंने मुझे पत्र भेजा–''मैं आपको अपने समस्त गौड़ीय साहित्य के अनुवाद, मुद्रण–प्रकाशन आदि का लीगल अधिकार देता हूँ कि अंशरूप में, समग्ररूप में, किसी रूप में, किसी भी नाम से आप उसे प्रकाशित कर सकते हैं। इससे बढ़कर श्रीमहाप्रभुकृपापुष्ट मेरे परिश्रम की और क्या सार्थकता हो सकती है?''–ऐसी उदारता, करुणा तथा पारमार्थिक दृष्टि किसी मनीषी में आज सम्भव नहीं दीखती। इसका निदान था श्रीमन्महाप्रभु के प्रेम–भक्ति सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार में उनका तीव्र मनोनिवेश।

इस परम भागवत विभूति की कृपा से प्रेरित होकर मैंने श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीचैतन्यभागवत आदि ग्रन्थ विस्तृत हिन्दी टीकाओं सहित सम्पादित एवं प्रकाशित किये।

''गौड़ीयवैष्णव दर्शन'' जिसे समस्त गौड़ीय एवं व्रजमण्डल के विद्वान् आचार्य सन्त ''गौड़ीयवैष्णव दर्शनकोष'' की आख्या देते हैं, उसके प्रथम पर्व प्रथमांश ''ब्रह्मतत्त्व'' का हिन्दीभाषा में "श्रीहरिनाम कल्पतरु" नामक वार्षिक पत्रिका के रूप में १६ अंकों में प्रकाशित किया तथा श्रीहरिनाम संकीर्तन

मण्डल के प्रति वार्षिक सम्मेलन में उन्हें निःशुल्क वितरण किया; अस्तु।

उसी "गौड़ीयवैष्णव दर्शन" में आलोचित ''माध्वसम्प्रदाय तथा गौड़ीयसम्प्रदाय'' बृहद् अंश का हिन्दी अनुवाद देखकर मुझे अति हर्ष होना स्वाभाविक है; अतः डॉ. नित्यानन्ददास साधुवाद के पात्र हैं। उपर्युक्त प्रबन्धों में जो कुछ डॉ० श्रीराधागोविन्दनाथ ने निरूपण किया है, उसका सुधी पाठकगण ध्यानपूर्वक अनुशीलन करने से दोनों सम्प्रदायों के उपास्य–उपासनागत ज्ञातव्य सिद्धान्तों के भेद, तारतम्य और उत्कर्ष–अपकर्ष का निर्णय सहज में कर सकते हैं। गौड़ीयवैष्णव सम्प्रदाय श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के द्वारा प्रवर्त्तित पृथक् सम्प्रदाय है। अतः श्रीकर्णपूर गोस्वामी तथा श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य के कथनोपकथन अनुसार इस सम्प्रदाय का नाम ''श्रीचैतन्य सम्प्रदाय'' ही अति संगत और समीचीन है। श्रीचैतन्यदेव के नित्य–पार्षद गौड़ीय गोस्वामीवृन्द ने उनकी कृपा शक्ति से श्रीचैतन्यसम्प्रदाय के समस्त सिद्धान्तों को अनुबन्ध चतुष्टय को विस्तृत रूप में प्रसारित–प्रचारित किया, अतएव ''गौड़ीय–सम्प्रदाय'' नाम से भी इसकी ख्याति सर्वत्र स्वीकृत है। श्रीगौड़ीय गोस्वामिवृन्द इस सम्प्रदाय के आचार्य हैं।

''वैष्णव–सम्प्रदाय चार हैं''–इस प्रकार की अप्रामाणिक धारणा का मूल ग्रन्थकार ने पूर्णतः निरसन कर दिया है।

हां यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कविकर्णपूर रचित गौरगणो–द्देशदीपिका में पद्मपुराण के नाम से सम्प्रदायों को चार संख्या में सीमाबद्ध करने वाला जो श्लोक उद्धृत किया गया है वह पद्मपुराण में कहीं नहीं हैं। अपनी रचना गौरगणोद्देशदीपिका में कविकर्णपूर के द्वारा उस श्लोक का उल्लेख करना भी युक्तिसंगत नहीं है। कविकर्णपूर सोलहवीं शताब्दी में वर्तमान थे। इनसे पहले श्रीरामानन्द आचार्य के द्वारा रामानन्द–सम्प्रदाय का उत्तरी भारत में व्यापक प्रभाव, प्रचार–प्रसार था। श्रीरामानन्द आचार्य का समय है पन्द्रहवीं शताब्दी (१४१३ से १५२४ सन्)। उस समय पाँच सम्प्रदाय वर्तमान थीं। अतएव कविकर्णपूर जैसा प्रबुद्ध साहित्य–प्रणेता १६वीं शताब्दी में अपनी रचना में चार सम्प्रदायों का कैसे उल्लेख कर सकता है ? जिस प्रकार गौरगणोद्देशदीपिका में यह श्लोक घुसाया गया है, वैसे ही प्रमेयरत्नावली में तथा भक्तिरत्नाकर आदि अनेक ग्रन्थों में दुराग्रही साहित्य–विकृतकारी लोगों ने सम्प्रदाय सीमाबद्धता के श्लोक घुसाये हैं। उसी प्रकार श्रीनाभाजी कृत भक्तमाल के किसी किसी संस्करण में एक दोहा (सं० २६) घुसाया है, जिसमें चार सम्प्रदायों की बात कही गयी है। भक्तमाल के अनुसन्धाता समस्त संकलनकर्ता तथा टीकाकारों ने उस दोहे को प्रक्षिप्त कहा है।

यहाँ यह भी एक प्रश्न उठता है कि जब रामानुज, माध्व, विष्णुस्वामी, निम्बार्क तथा रामानन्द सम्प्रदाय ५ संख्या में सर्वत्र मान्य और प्रचलित हैं,

उनकी तरह ''माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय'' को भी एक छठी सम्प्रदाय मानने में क्या आपत्ति है ? कोई आपत्ति नहीं। अनुसंधान करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव के नित्य पार्षद श्रीपादगोपालभट्ट गोस्वामी ने अपने को कभी ''माध्वगौड़ेश्वराचार्य'' स्वीकार नहीं किया, न ही किसी अन्य गौड़ीय सम्प्रदायाचार्य ने उन्हें इस नाम की सम्प्रदाय के आचार्यरूप में अभिहित किया है–''माध्व'' शब्द सन् १६७८ के बाद जोड़ा गया दीखता है। सन् १६०८ (संवत् १६६५) में ''श्रीहरिभक्तिविलास'' ग्रन्थ का हिन्दी संस्करण श्रीचैतन्यसम्प्रदायी छत्रपुराधीश्वर महाराज श्रीविश्वनाथ सिंह बहादुर के द्वारा वृन्दावन में ही प्रकाशित कराया गया था। उसके टाइटल पृष्ठ पर इस प्रकार मुद्रित है–

श्रीमत् श्रीकृष्णचैतन्यचरणसरसीरुहचञ्चरीक गौड़ेश्वराचार्य
श्रीमद्गोपाल भट्ट गोस्वामी विरचितः।

यहाँ "गौड़ेश्वराचार्य" के साथ ''माध्व'' का प्रयोग नहीं है। दूसरी ओर, श्रीपादगोपालभट्ट प्रभु के परिवार में गोस्वामी श्रीदामोदरशास्त्री, जो भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध सार्वभौम दार्शनिक विद्वान् माने जाते हैं, उन्होंने अपने को गौड़ेश्वराचार्य नहीं स्वीकारा बल्कि माध्वसम्प्रदायाचार्य रूप में अपना परिचय दिया है। श्रीश्रीधरस्वामी के छोटे भ्राता श्रीलक्ष्मीधर रचित ''श्रीभगवन्नामकौमुदी'' सन् १६२७ (संवत् १६८४) में काशी से प्रकाशित हुई। उसका संशोधन–सम्पादन कर श्रीदामोदरगोस्वामिपाद ने अपना परिचय इस रूप में दिया है–

श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्यदार्शनिक सार्वभौम
साहित्यदर्शनाद्याचार्यतर्करत्नन्यायरत्न
गोस्वामी श्रीदामोदर शास्त्रिणा टिप्पण्या परिष्कृत संशोधन, सम्पादिता

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि सन् १६२७ तक श्रीपाद गोपालभट्ट गोस्वामी वंशज अपने को ''गौड़ेश्वराचार्य'' मानते रहे हैं। परवर्तिकाल सन् १६२७ में उनके कई वंशज अपने को माध्वसम्प्रदायी मानने लगे। इस असामञ्जस्य के समाधान के लिये लगता है आज से लगभग ७०–७५ वर्ष पूर्व ही 'गौड़ेश्वर' के साथ 'माध्व' शब्द को जोड़कर "माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय" का नामकरण हुआ। उसे छठी सम्प्रदाय कहना अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि दोनों भिन्न सम्प्रदायें हैं। श्रीअमियनिमाई के लेखक के मतानुसार श्रीपाद गोपालभट्ट गोस्वामी के कारण ही 'श्रीराधावल्लभ' सम्प्रदाय का उद्भव हुआ जो आज तक सर्वत्र समादृत है। उसे सातवीं सम्प्रदाय माना जा सकता है।

बात सन् १६७१–७२ की है कि वृन्दावन में ''माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय समिति'' की स्थापना की गयी। उसके अध्यक्ष थे चारसम्प्रदाय आश्रम के

महन्त महामण्डलेश्वर श्रीरामदास जी शास्त्री, मंत्री थे श्रीश्रीधरचन्द्रशास्त्री, अधिकारी श्रीराधाश्यामसुन्दर मन्दिर। मुझे उसमें कोषाध्यक्ष नियुक्त किया गया और भी ५–६ सदस्य कार्यकारिणी के चुने गये। उक्त संस्था को सोसायटी एक्ट २१/१८६० के अधीन पंजीकृत (रजिस्टर्ड) कराने का काम मुझे सौंपा गया। मैंने उसे लखनऊ से पंजीकृत कराया। समिति के नामकरण के समय परस्पर चर्चा चली कि ''माध्वगौड़ेश्वर'' की बजाय ''गौड़ीय सम्प्रदाय समिति'' नाम पंजीकृत कराया जाय। तब महन्त रामदास जी शास्त्री ने बताया कि भारत में होने वाले चार कुम्भ पर्वों में गौड़ीय सम्प्रदाय नाम से पण्डाल–कैम्प लगाने के लिए सरकार स्थान नहीं देती है। सरकार चार सम्प्रदाय मानती है–पांचवी सम्प्रदाय को स्थान एलाट नहीं करती। तर्क उठाया गया कि पांचवी रामानन्द सम्प्रदाय को कैसे स्थान एलाट किया जाता है ? उत्तर था कि वह अपने को रामानुज सम्प्रदाय के अधीन घोषित कर स्थान एलाट करा लेती है। वस्तुतः रामानन्द सम्प्रदाय के उपास्य, उपासना पृथक् हैं, उसके आचार्य अलग हैं। उसकी गुरुप्रणाली बिल्कुल पृथक् है, किन्तु रामानुज सम्प्रदाय के अन्तर्गत होने का छल करके वह स्थान ले लेती है। इसी तरह गौड़ीय सम्प्रदाय का माध्वसम्प्रदाय से कुछ भी सम्बन्ध न होते हुए हम अपने साथ 'माध्व' शब्द मात्र को जोड़कर चारों कुम्भों में सरकार से स्थान एलाट करा लेते हैं। अतः समिति को ''माध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदाय समिति'' नाम से ही पंजीकृत कराया जाय।''

तात्पर्य यह है कि गौड़ीय आचार्यों ने वास्तव तथ्य से दूर रहकर स्वार्थपूर्ण उद्देश्य से अपने साथ 'माध्व' को जोड़ रखा है। सन् १९६३ में प्रभुकृपा से मेरे द्वारा श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला का हिन्दी अनुवाद तथा चैतन्यचरणचुम्बिनी टीका लिखी जा रही थी, उस समय मैं इन सूक्ष्म तथ्यों से पूरी तरह अनभिज्ञ था। मेरे पीछे बाबा गोवर्धनदास को लगा दिया गया था। मैं गौड़ीय सम्प्रदाय को एक पृथक् सम्प्रदाय रूप में हिन्दी समाज के सामने कहीं प्रस्तुत न कर दूँ, इसलिए बाबा ने मुझे पथ–भ्रान्त कर मुझसे भी गौड़ीय सम्प्रदाय को ''ब्रह्ममाध्व सम्प्रदाय'' के अन्तर्भुक्त ही निरूपण करा दिया। यह सब बातें अब कुछ अनुसन्धान करने पर सामने आ रही हैं; अस्तु।

इन तथ्यों का अनुसन्धान करने के बाद श्रीपादगोपालभट्ट गोस्वामी के प्रमुख वंशधर जगद्गुरु श्रीपुरुषोतम गोस्वामी महाराज अब कई वर्षों से अपने को ''श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्य'' नहीं कहलवाते, अपने नाम के साथ ''श्रीचैतन्य– सम्प्रदायाचार्य'' उल्लेख करते हैं।

इसी प्रकार श्रीश्यामानन्दप्रभु के वंशज, जिनके परिवार में ''श्रीगोविन्दभाष्य'' के रचयिता तथा चैतन्यसम्प्रदाय की पृथकता के संस्थापक श्रीपादबलदेव विद्याभूषण को होने का गर्व है, वे पहले अपने को श्रीमन्माध्व

गौड़ेश्वराचार्य कहलवाते, लिखते थे, किन्तु अब "श्रीश्रीकृष्णचैतन्य सम्प्रदायाचार्य श्रीकृष्णगोपालानन्द देव गोस्वामी, श्रीश्रीराधाश्यामसुन्दर मन्दिर, वृन्दावन" इस प्रकार महोत्सव–विज्ञापनों में प्रकाशित करते हैं।

जो आचार्य–गोस्वामी आदि महानुभाव श्रीचैतन्यसम्प्रदायी होते हुए भी श्रीमाध्व से जुड़े रहना चाहते हैं, जुड़े रहें कोई आपत्ति नहीं; वे सर्वदा सम्मानीय हैं।

सबसे अधिक आश्चर्य का विषय यह है कि श्रीमन्माध्वपीठाचार्य महानुभावगण गौड़ीय या चैतन्यसम्प्रदाय को पहिचानते भी नहीं हैं। यहाँ तक कि वे अपने को गौड़ीय सम्प्रदाय से पूर्ण अपरिचित कहते हैं। दो एक आंखों देखी घटनाओं में ऐसा अनुभव किया गया है–

लगभग सन् १९५९–६० की बात है कि उडूपि से श्रीमन्माध्वाचार्य–पीठाधीश्वर वृन्दावन में पधारे थे। उन्हें ज्ञानगुदड़ी में ठहराया गया था। श्रीराधारमण मन्दिर के प्रमुख गोस्वामीवृन्द, महन्त श्रीरामदास शास्त्री, श्रीश्रीधरशास्त्री आदि अनेक गौड़ीय सम्प्रदायी महानुभाव उन्हें एक "अभिनन्दन" प्रस्तुत करने के लिये आज्ञा माँगने गये। लेखक भी उनके साथ था। जब श्रीपीठाधीश्वर से संस्कृत में गोस्वामीपाद श्रीरासबिहारीजी ने उन्हें उनके अनुगत सम्प्रदायी बताया तो उन्होंने कहा–"हम नहीं जानते गौड़ेश्वर सम्प्रदाय कौन सी है–और हमारी कैसी शाखा है ? फिर भी आप चाहते हैं तो समय पर हमें अधिवेशन में ले जाइयेगा। हम आपका अभिनन्दन स्वीकार करेंगे"।

उनके वचन सुनकर सबके मुख निष्प्रभ हो गये और कुछ महानुभावों का मन भी खराब हो गया। दूसरे दिन श्रीराधारमण घेरा रासमण्डल पर उनका अभिनन्दन किया गया, परन्तु कुछ गोस्वामीगण तथा गौड़ीय सम्प्रदायी लोग उपस्थित ही न हुए।

सन् १९८६ में श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल वृन्दावन की ओर से श्रीमन्महाप्रभु की पंचशताब्दी के अवसर पर एक विस्तृत स्मारिका प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। सम्पादकीय सेवा–अधिकारी नियुक्त होने के कारण मैंने "श्रीमन्माध्व पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीविद्यामान्य तीर्थ स्वामीजी महाराज, पालिमार भण्डाक केरीमठ, अटमार, उडुपि दक्षिण कन्नड़" के चरणों में एक प्रार्थना–पत्र दिनांक २०.१०.८३ को भेजा कि इस प्रकार श्रीमहाप्रभु गौरांग की पंचशताब्दी के उपलक्ष्य में एक स्मारिका छपने जा रही है। कृपया अपना शुभमंगलमय आशीर्वाद प्रदान करें।" इसके उत्तर में दिनांक २८.१०.८३ को पत्र आया "हम श्रीगौरांग के विषय में कुछ नहीं जानते। श्रीगौरांग की चरित्र का किताब भेजिये।" इत्यनेकनारायणस्मरण।" हस्ताक्षर तेलगु भाषा में थे। आश्चर्य से स्तम्भित रह गया निराश हो गया मैं। (पत्र रिकार्ड में सुरक्षित है।)

तीसरी घटना तो अभी कुछ थोड़े वर्षों की है– श्रीचैतन्य संस्थान, भ्रमरघाट पर जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तम गोस्वामीजी की ओर से सूचना मिली कि श्रीमन्मध्वाचार्य पीठाधीश्वर पधार रहे हैं, उनके शुभाभिनन्दन तथा प्रवचन में भाग लें।'' मैं समय पर वहाँ उपस्थित हुआ। श्रीपीठाधीश्वर दो–तीन शिष्यों के साथ मंच पर विराजमान थे। जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तम गोस्वामीपाद ने *''अनर्पितचरीं चिरात्''* श्लोक की विस्तृत व्याख्या से सभा का आरम्भ किया। फिर वे स्वयं सभा से चले गये। गोस्वामी श्रीवत्सजी सभा का संचालन करते रहे। श्रीमन्माध्व पीठाधीश्वर महाराज ने एक शब्द भी श्रीगौरांग महाप्रभु के संबंध में नहीं कहा। विषयान्तर पर प्रवचन देते रहे।

इस सब आलोचना से मेरा एकमात्र उद्देश्य और विनम्र निवेदन यह है कि सम्प्रदाय की सीमाबद्धता कहीं भी प्रामाणिक नहीं है। श्रीचैतन्यसम्प्रदाय के नाम पर वैष्णवसंन्यासी एक नयी सम्प्रदाय का प्रचलन हो रहा है। अनेक संस्थाएँ, मठ मन्दिरों की स्थापना हो रही है, वह सब सुन्दर है, शुभ है। इस परिस्थिति में सम्प्रदायें चार हैं, कैसे स्वीकारा जा सकता है ? हरिदासी सम्प्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय, सखीसम्प्रदाय, शुकसम्प्रदाय, अनेकानेक सम्प्रदायें वर्तमान हैं और हैं भी कलियुग में। अतः कलि में चार सम्प्रदाय होंगी, ऐसा कहना मिथ्या आत्मवंचना मात्र है। जिस साधक की जिस वैष्णवसम्प्रदाय में श्रद्धा है, गुरुदीक्षा है, उसमें ही स्थिरता रहनी चाहिए। सब वैष्णव–सम्प्रदायें पूजनीय आदरणीय हैं। वैष्णवसम्प्रदायों के अतिरिक्त भी सब सम्प्रदायें वन्दनीय हैं, अनिन्दनीय हैं। उनके प्रति संकीर्णता अथवा दोष दृष्टि एक महत् अपराध ही है।

मूल ग्रन्थ लेखक, अनुवादक का आशय तथा मेरी भी एकमात्र मान्यता यही है कि श्रीचैतन्यसम्प्रदाय ही वस्तुतः गौड़ीय सम्प्रदाय है, जिसके प्रवर्त्तक हैं स्वयं श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव। उसका पृथक् अस्तित्व है एवं सर्वसम्प्रदायों के अनुबन्ध चतुष्टय से इसका अपना वैशिष्ट्य है। श्रीचैतन्यसम्प्रदाय किसी सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त नहीं और न ही किसी की शाखा है। किमधिकं विज्ञेषु

क्षमा–याचना के साथ

निवेदक

श्रीश्यामदास

सम्पादक ''श्रीहरिनाम'' मासिक

श्रीधाम वृन्दावन

दि० १६ जुलाई, सन् २०००

श्रीचैतन्य–सम्प्रदाय
(श्रीगौड़ीय–वैष्णव सम्प्रदाय)

– डॉ. राधागोविन्द नाथ

कुछ एक लोगों का विचार है कि गौड़ीय–वैष्णव सम्प्रदाय श्रीमन् मध्वाचार्य के द्वारा प्रवर्त्तित माध्व–सम्प्रदाय की ही एक शाखा है, अतः उसके ही अन्तर्भुक्त है। इस सम्बन्ध में कुछ आलोचना करने का प्रयोजन प्रतीत होता है।

दोनों सम्प्रदायों में जो–जो विषय एक से लगते हैं; पहले उन पर विचार करते हैं:–

माध्व–सम्प्रदाय में ईश्वर सेव्य है और जीव सेवक। गौड़ीय–सम्प्रदाय का भी यही मत है; किन्तु केवल इस समानता मात्र से इसे माध्व–सम्प्रदाय की शाखा नहीं माना जा सकता; क्योंकि रामानुज, निम्बार्कादि अन्य कई सम्प्रदायों में भी इस प्रकार का सेव्य–सेवक भाव विद्यमान है। भावों की समानता यदि सम्प्रदायों की एकता का कारण होती, तो सब सम्प्रदायें एक ही होतीं, किन्तु ऐसा नहीं है।

उपास्य–स्वरूप में माध्व–सम्प्रदाय एवं गौड़ीय–सम्प्रदाय का कोई मेल नहीं है। माध्व–सम्प्रदाय के उपास्य हैं वैकुण्ठाधिपति श्रीनारायण, और गौड़ीय सम्प्रदाय के उपास्य हैं व्रजविहारी श्रीकृष्ण। माध्व–सम्प्रदाय श्रीनारायण को ही परब्रह्म मानती है, किन्तु गौड़ीय–सम्प्रदाय व्रज में विलास करने वाले नन्दनन्दन श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म मानती है। श्रीनारायण श्रीकृष्ण का ही एक प्रकाश हैं, विलासरूप हैं, ऐसा मानती है गौड़ीय–वैष्णव सम्प्रदाय।

इन दोनों सम्प्रदायों की उपासना–प्रणाली भी भिन्न–भिन्न है। माध्व सम्प्रदाय की उपासना है–

''वर्णाश्रमधर्म कृष्णे समर्पण''

–श्रीचै.चरितामृत, २–६–२३८।।

"भजनं दशविधं वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायः, कायेन दानं, परित्राणं परिरक्षणं, मनसा दया स्पृहा श्रद्धाचेति। अत्रैककं निष्पाद्य नारायणे समर्पणं भजनम्।।"–श्रीमध्वाचार्य के द्वारा भजन के सम्बन्ध में उपदिष्ट ''सर्वदर्शन–संग्रह'' में ऐसा कहा गया है; भजन दस प्रकार का है–सत्य, हित, प्रियकथन तथा शास्त्रानुशीलन, ये चार प्रकार का ''वाचिक–भजन'' है। दया, स्पृहा तथा श्रद्धा, यह तीन प्रकार का ''मानसिक–भजन'' है। दान, परित्राण

तथा परिरक्षण, ये तीन प्रकार का ''कायिक–भजन'' है। इन दसों को पृथक्–पृथक् सम्पन्न करके श्रीनारायण को समर्पण करना ही भजन है।

किन्तु गौड़ीय–सम्प्रदाय की उपासना तो 'वर्णाश्रमादि धर्मों का परित्याग करके श्रवण–कीर्तनादि शुद्धा साधन–भक्ति का ही अनुष्ठान करना है। फिर दोनों की उपासना के लक्ष्य में भी भेद है। माध्व–सम्प्रदाय का लक्ष्य है–पञ्चविध मुक्ति को प्राप्त करके वैकुण्ठ की प्राप्ति–

पञ्चविध मुक्ति पाञा वैकुण्ठ गमन।
साध्य श्रेष्ठ हय एइ शास्त्रनिरूपण।।

–श्रीचै०च० २–६–२३६।।

किन्तु गौड़ीय–सम्प्रदाय का लक्ष्य है व्रजविहारी श्रीकृष्ण की प्रेमसेवा। पांचों प्रकार की मुक्तियों में से कोई भी मुक्ति गौड़ीय–सम्प्रदाय की काम्य वस्तु नहीं है।

उपास्य के एक होने पर भी गौड़ीय–सम्प्रदाय को माध्व–सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त नहीं माना जा सकता; जैसे रामानुज सम्प्रदाय के उपास्य, उपासना एवं साध्य भी माध्व–सम्प्रदाय के अनुरूप हैं तथापि एक सम्प्रदाय को दूसरी सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त नहीं माना जाता। दोनों सम्प्रदायें पृथक् ही मानी जाती हैं। इन दोनों सम्प्रदायों में साध्य–साधन एक जैसे होते हुए भी ब्रह्म के साथ जीव–जगत् के सम्बन्ध विषय में पृथकता ही है। ब्रह्म के साथ जीव–जगत् के सम्बन्ध विषय में पार्थक्य के कारण दोनों सम्प्रदायें पृथक् मानी जाती हैं। उसी प्रकार साध्य–साधनादि में प्रायः समानता होते हुए भी गौड़ीय–सम्प्रदाय एवं निम्बार्क–सम्प्रदाय में ब्रह्म के साथ जीव–जगत् के सम्बन्ध को लेकर पार्थक्य है, अतः इन दोनों सम्प्रदायों को अलग माना जाता है।

ब्रह्म के साथ जीव–जगत् के सम्बन्ध के विषय में माध्व–सम्प्रदाय एवं गौड़ीय–सम्प्रदाय का यदि मेल रहता तो भी गौड़ीय–सम्प्रदाय को माध्व–सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त माना जा सकता था, किन्तु इस विषय में भी दोनों सम्प्रदायों में मतभेद है। माध्व–सम्प्रदाय भेदवाद को मानती है, किन्तु गौड़ीय–सम्प्रदाय अचिन्त्य–भेदाभेद का निरूपण करती है। दोनों सम्प्रदायों में इस विषय में भारी मतभेद है।

इस प्रकार हम देखते हैं; केवल सेव्य–सेवक भाव को छोड़कर अन्य समस्त विषयों में दोनों सम्प्रदायों में विशेष प्रकार के भेद विद्यमान हैं। और फिर श्रीमन्मध्वाचार्य के द्वारा कुछ ऐसी उक्तियाँ अभिव्यक्त हुई हैं, जो केवल शास्त्र–विरुद्ध ही नहीं बल्कि गौड़ीय–सम्प्रदाय के लिए हृदयविदारक भी हैं। श्रुति–स्मृति के अनुसार कृष्णकान्ता व्रजगोपीगण हैं श्रीकृष्ण की स्वरूपशक्ति की मूर्त्त–विग्रह; वे जीवतत्त्व नहीं हैं (गौड़ीय वैष्णव दर्शन १–१–१४६–अनुच्छेद)।

किन्तु श्रीमध्वाचार्य ने उन्हें ''अप्सरःस्त्री'' कहा है। अप्सराएँ प्राकृत स्वर्गवासिनी रमणियाँ हैं, वे जीवतत्त्व हैं; देह सुख–भोग परायणा हैं, अपने देह द्वारा दूसरे की प्रीति विधान करने में वे संकोच–हीना हैं।

"विमुक्तावपि कामिन्यो विष्णुकामा व्रजस्त्रियः।
द्वेषिणश्च हरौ नित्यं द्वेषेण तमसि स्थिताः।।
स्नेहभक्ताः सदा देवाः कामित्वेनाप्सरःस्त्रियः।
काश्चित् काश्चिन्न कामेन भक्तया केवलयैव तु।।
भक्त्या वा कामभक्त्या वा मोक्षो नान्येन केनचित्।
कामभक्त्याप्सरःस्त्रीणामन्येषां नैव कामतः।।
उपास्यः श्वशुरत्वेन देवस्त्रीणां जनार्द्दनः।
जारत्वेनाप्सरःस्त्रीणां कासाञ्चिदिति योग्यता।।"

(मध्वाचार्यरचित भागवत–तात्पर्य)

परन्तु व्रजगोपीवृन्द का कृष्णसुखैकतात्पर्यमय प्रेम तो सर्वतोभावसे कामगन्धलेश शून्य है, वह ही शास्त्र–सम्मत है। (गौ० वै० दर्शन १–१–१५४–५५ अनु०)।।

शास्त्रमतानुसार भगवान् श्रीकृष्ण की प्रियतमा व्रजगोपीगण ही भक्तसमुदाय में मुकुटमणि हैं। उनके प्रेम के ही वे सर्वतोभाव से वशीभूत हैं। श्रीकृष्ण ने स्वयं ही कहा है–ब्रह्मा, शिव यहाँ तक कि वैकुण्ठेश्वरी लक्ष्मीदेवी भी उनकी उतनी प्रिय नहीं हैं जितनी की गोपीगण (१–१–१५४ अनु०) भक्तश्रेष्ठ श्रीउद्धव एवं श्रीब्रह्मा भी ब्रजगोपियों की चरणरेणु की कामना करते रहते हैं (१–१–१५५ अनु०) व्रजगोपियों का महाभाव श्रीमुकुन्द की महिषीगण रुक्मिणी आदि के लिए भी अति दुर्लभ है। किन्तु श्रीमध्वाचार्य के मत में भक्ति में श्रीरुक्मिणी–सत्यभामा आदि अष्ट महिषियाँ गोपीयों की अपेक्षा दुगुनी श्रेष्ठ हैं, उनकी अपेक्षा नन्दगृहिणी यशोदा सहस्त्रगुनी श्रेष्ठ है, यशोदा से देवकीदेवी श्रेष्ठ हैं, देवकी की अपेक्षा श्रीवसुदेव, श्रीवसुदेव से भी अर्जुन और अर्जुन से भी श्रेष्ठ हैं भक्ति में श्रीबलराम। श्रीब्रह्मा के अतिरिक्त और कोई भी भक्ति में श्रीबलराम की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं है। श्रीब्रह्मा ही सर्वाधिक श्रेष्ठ है, वह ''ईशेश'' हैं।

"कृष्णप्रियाभ्यो गोपीभ्यो भक्तितो द्विगुणाधिकाः।
महिष्यष्टौ विना यास्ताः कथिताः कृष्णवल्लभाः।।
ताभ्यः सहस्रसमिता यशोदा नन्दगेहिनी।
ततोऽप्यभ्यधिका देवी देवकी भक्तितस्ततः।।
वसुदेवस्ततो जिष्णुस्ततो रामो महाबलः।
न ततोऽभ्यधिकः कश्चित् भक्त्यादौ पुरुषोत्तमे।।

विना ब्रह्माणमीशेशं स हि सर्वाधिकः स्मृतः।।"

(मध्वाचार्य रचित भागवत–तात्पर्यम् ११–१२–२२)

इससे जाना जाता है कि भक्तितारतम्यानुसार माध्व–विचार में व्रजगोपीगण सबसे निचले स्तर पर हैं और श्रीब्रह्मा सबसे ऊँचे स्तर पर हैं। यह उक्ति समस्त शास्त्रवचनों की विरोधी उक्ति है। माध्व–सम्प्रदायी ब्रह्मा को ही अपनी सम्प्रदाय का आदि गुरु मानते हैं, इसलिए ही, जान पड़ता है उन्होंने ब्रह्मा की इतनी महिमा बखान की है। किन्तु वामनपुराण में श्रीभृगु–प्रभृति महर्षिगणों के प्रति ब्रह्माजी ने स्वयं कहा है–

षष्टिवर्षसहस्राणि मया तप्तं तपः पुराः।
नन्दगोपव्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये।
तथापि न मया प्राप्तास्तासां वै पादरेणवः।।

(श्रीलघुभागवतामृत, भक्तामृत–३१ धृत बृहद्वामन–वचन)

ब्रह्माजी ने कहा–"पूर्वकाल में नन्दव्रजवासिनी गोपीगण की चरणरेणु की प्राप्ति के लिए साठ सहस्र वर्षों तक मैंने तपस्या की थी, फिर भी मैं उनकी पादरेणु को प्राप्त न कर सका।

ब्रह्माजी ने उसी स्थान पर और भी कहा–*"नाहं शिवश्च शेषश्च श्रीश्च ताभिः समाः क्वचित्।।"* अर्थात्–मैं (ब्रह्मा), शिव, शेष नामक अनन्तदेव एवं लक्ष्मीदेवी, हम सबमें से कोई भी कभी व्रजगोपियों के समान नहीं हो सकता।"

भक्तिविषय में ब्रह्मा की सर्व श्रेष्ठता को स्थापन न कर पा सकने के कारण ही श्रीमध्वाचार्य ने श्रीमद्भागवत के ब्रह्ममोहन लीला सम्बन्धीय दशमस्कन्ध के १२ वें, १३ वें एवं १४ वें अध्यायों को स्वीकार नहीं किया है। इन पर माध्व–भाष्य या उनकी टीका नहीं है।

इस स्थिति में गौड़ीय–सम्प्रदाय को माध्व–सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त क्या माना जा सकता है ?–कदापि नहीं। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की किसी भी उक्ति से यह ज्ञात नहीं होता कि उन्होंने माध्वमत को स्वीकार किया हो; बल्कि उन्होंने माध्वमत का अनुमोदन भी नहीं किया। इस बात का स्पष्ट प्रमाण मौजूद है। दक्षिणदेशों में भ्रमण करते समय मध्वानुगत तत्त्ववादी आचार्य के साथ विचार करते हुए श्रीमहाप्रभु ने माध्वमत का खण्डन ही किया है।

श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा साक्षात् रूप से शिक्षा प्राप्त करने वाले श्रीश्रीरूप–सनातन गोस्वामी ने और उनसे शिक्षा प्राप्त करने वाले श्रीजीव गोस्वामी आदि किसी की भी उक्ति से माध्वमत को स्वीकारने की बात कहीं नहीं देखी गयी।

श्रीमद्भागवत (१०–१२–१) श्लोक की बृहद्वैष्णवतोषणी टीका में श्रीपादसनातन गोस्वामी ने तत्त्ववादी माध्व सम्प्रदाय के मत का प्रतिवाद ही किया है। उन्होंने लिखा है कि तत्त्ववादिगण मुक्ति को ही क्योंकि परम पुरुषार्थ मानते हैं इसलिए श्रीकृष्ण द्वारा असुरों को मार करके दी गई मुक्ति तथा गोपियों के द्वारा स्तन्यपानादि को वे सहन नहीं कर पाते। अतएव वे श्रीभागवत के दशम स्कन्ध के छठे अध्याय के पूतना की सद्गति–प्रतिपादक *"पूतना लोकबालघ्नी"* आदि छह एवं *"य एतत् पूतनामोक्षम्"* इत्यादि श्लोक की भाँति १२वें से १४वें इन ३ अध्यायों को भी स्वीकार नहीं करते, जो संगत नहीं है। श्रीश्रीधरस्वामि आदि अनेक प्राचीन एवं आधुनिक महात्माओं ने इन्हें स्वीकार किया है। श्रीवृन्दावन में तो अघासुर वधादि का एवं ब्रह्मस्तुति आदि का स्थान (चौमुहा गांव) अब भी प्रसिद्ध है; विशेषकर पद्मपुराण में भी इन समस्त लीलाओं का वर्णन प्राप्त होता है। वैष्णवप्रवरगणों के सिद्धान्तों से भी उनका कोई विरोध नहीं है। भक्ति–निष्ठ लोगों के लिए मुक्ति की कोई उपादेयता नहीं है, इस बात को श्रीभागवत में अनेक बार स्पष्टरूप से कहा गया है। श्रीकृष्ण ने जिन–जिन का स्तनपान किया वे समस्त ही प्रायः श्रीयशोदा की भाँति माननीया हैं। श्रीकृष्ण की प्रियतमा परा नवतरुणीगण भी सहस्रों हैं। इसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं है। माध्व–सम्प्रदाय द्वारा अस्वीकार किये गये इन तीनों अध्यायों में तो विशेषकर भक्ति, भक्त एवं भगवान्; इन तीनों की असाधारण महिमा का ही प्रदर्शन किया गया है। किन्तु श्रीभगवान् के अनुग्रह–विशेष से ही उसका अनुभव सम्भव हो सकता है क्योंकि ये अत्यन्त गोपनीय हैं। इस प्रकार तत्त्ववादीगण के वचन भी उपपन्न प्रतीत होते हैं, अर्थात् वे इन गोपनीय वचनों को अनुभव नहीं कर पाये, उनकी महिमा को न जानकर ऐसी धारणा को पोषण करते हैं।

श्रीपाद जीवगोस्वामी ने भी अपनी लघु वैष्णवतोषणी में मध्वाचार्य द्वारा ब्रह्ममोहनलीला सम्बन्धीय इन तीनों अध्यायों को स्वीकार न करने पर तीव्र प्रतिवाद करते हुए इसे अयौक्तिक एवं अशास्त्रीय कहा है। ब्रह्मा को भक्तशिरोमणि रूप में प्रतिष्ठित करने के उत्कट प्रयास में श्रीमध्वाचार्य ने *"नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो"*–इत्यादि (श्रीभा० ३–४–३१) श्लोक का भी स्वकपोलकल्पित अर्थ करके श्रीकृष्ण की उक्ति के तात्पर्य को भी विपरीत रूप में प्रस्तुत किया है एवं ब्रजगोपियों के अपकर्ष को स्थापन करने के प्रयास में श्रीभागवत (१०–२६) अध्याय के प्रसंग में उनके औपपत्य भाव की निन्दा की है। रासपंचाध्यायी के अन्य किसी अध्याय का भाष्य उन्होंने नहीं किया। इसका कारण भी सहज में ही जाना जा सकता है।

इन कारणों से स्पष्टरूप में ज्ञात होता है कि माध्वमत के साथ गौड़ीय मत किसी प्रकार भी मेल नहीं खाता बल्कि किसी–किसी विषय में माध्वमत

गौड़ीयमत का विरोधी है। इस अवस्था में गौड़ीय–सम्प्रदाय को माध्व–सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त या उसकी शाखा मानने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

वास्तव में श्रीश्रीरूप–सनातनादि गोस्वामिगण से लेकर श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती पर्यन्त गौड़ीयवैष्णव आचार्यगणों में किसी ने भी तथा श्रीमन्महाप्रभु के चरित्र के वर्णन करने वालों में भी किसी ने गौड़ीय–सम्प्रदाय को माध्व–सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त या उसकी शाखा स्वीकार नहीं किया है।

श्रीकविकर्णपूर ने अपने "श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटक" में लिखा है–

"श्रीकृष्णचैतन्य–कियन्त एव वैष्णवा दृष्टास्तेऽपि नारायणोपासका एव। अपरे तत्त्ववादिनस्ते तथाविधा एव। निरवद्यं न भवति तेषां मतम्।।८–१।।

अर्थात्; श्रीकृष्णचैतन्य ने कहा–"(दक्षिण–देश यात्रा में) कतिपय वैष्णवों को मैंने देखा, वे श्रीनारायण उपासक थे। दूसरे वैष्णव तत्त्ववादिगणों को भी देखा, वे (माध्व–सम्प्रदायी) भी श्रीनारायण के उपासक थे। उनका मत स्तुत्य नहीं है, अर्थात् निन्दनीय है।

यहाँ कवि कर्णपूर की उक्ति से जाना जाता है कि स्वयं श्रीमन्महाप्रभु ने माध्वसम्प्रदाय के मत का अनुमोदन नहीं किया। अतएव श्रीमहाप्रभु ने अथवा उनके चरणाश्रित आचार्यगणों ने माध्व–सम्प्रदाय को स्वीकार किया हो, उसका कोई प्रमाण नहीं है।

गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीपाद जीवगोस्वामी ने तो स्पष्टरूप से माध्व–सम्प्रदाय को "अन्य सम्प्रदाय' कहा है। श्रीभागवत (१०/१२–१४) श्लोक के व्याख्यान में लघुवैष्णवतोषणी में, मध्वाचार्यकृत श्रीमद्भागवत के (१०/१३–१४ वें) अध्यायों के अस्वीकार किये जाने के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है– *"तदीय–स्वसम्प्रदायानंगीकार–प्रामाण्येन तस्याप्रामाण्यं चेत्, अन्य–सम्प्रदायांगीकार प्रामाण्येन विपरीतं कथं न स्यात्।।"* श्रीमध्वाचार्य के अपनी सम्प्रदाय–कृत श्रीमद्भागवत के दशम–स्कन्ध के द्वादशादि तीनों अध्याय अस्वीकार किये हैं; यदि वे अप्रमाणित हैं, तो अन्यान्य सम्प्रदायों के द्वारा उन तीनों अध्यायों को स्वीकार किये जाने के कारण श्रीमध्व का मत सबके विपरीत सिद्ध होता है। यहाँ श्रीपाद जीवगोस्वामी ने माध्व–सम्प्रदाय को "तदीय सम्प्रदाय" उनका मध्वाचार्य का सम्प्रदाय ऐसा कहा है। और आलोच्य तीनों अध्यायों के सम्बन्ध में जो मध्वाचार्य के मत का अनुमोदन नहीं करते हैं बल्कि मध्वाचार्य के विपरीत मत का समर्थन करते हैं, उनको अन्य सम्प्रदाय अर्थात् माध्व–सम्प्रदाय से पृथक् सम्प्रदाय कहा है। गौड़ीय–सम्प्रदाय भी उक्त माध्व–मत का अनुमोदन नहीं करती, विपरीत मत का ही समर्थन करती है। इसलिए गौड़ीय–सम्प्रदाय भी अन्यान्य सम्प्रदायों की भाँति माध्व–सम्प्रदाय से एक पृथक् सम्प्रदाय है, यह स्पष्ट है।

श्रीजीवपाद के उल्लेख से ''रामानुजमत'', "मध्वाचार्यमत" एवं ''स्वमत–अर्थात् श्रीजीव की स्वसम्प्रदाय का मत'' इनमें भेदवाचक शब्द के रहने से स्पष्टरूप से जाना जाता है कि गौड़ीयमत माध्वमत से भिन्न है।

श्रीपाद जीव गोस्वामी ने अपने सन्दर्भ ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर श्रीमध्वाचार्य को ''तत्त्ववादगुरु'' कहा है, किन्तु कहीं भी "स्वसम्प्रदायगुरु" अथवा "गौड़ीय–सम्प्रदायगुरु" नहीं कहा। इससे भी जाना जाता है कि माध्व–सम्प्रदाय गौड़ीय–सम्प्रदाय से भिन्न एक सम्प्रदाय है।

गौड़ीय–सम्प्रदाय भी माध्वसम्प्रदाय की भाँति सविशेषवादी है। इसलिए ब्रह्म के सविशेषत्वादि विषय में श्रीमध्वाचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में जो कुछ कहा है, उसका कोई–कोई अंश श्रीजीव गोस्वामी ने अपने भागवतसन्दर्भ में उद्‌धृत किया है। उन्होंने श्रीपाद शंकराचार्य की भी किसी किसी उक्ति को स्थान–स्थान पर उद्‌धृत किया है। श्रीमध्वाचार्य की किसी–किसी उक्ति को उद्‌धृत करने का अर्थ कोई यह लगाये कि वे माध्वमतावलम्बी थे तो फिर कोई यह भी कह सकता है कि श्रीजीव शांकरमतावलम्बी थे। वस्तुतः जैसे वे शांकरमतावलम्बी नहीं थे, उसी प्रकार वे माध्वमतावलम्बी भी नहीं थे। अपने मत के अनुकूल जो भी उक्ति उन्हें अच्छी लगी, दोनों सम्प्रदायों से ही उन्होंने ग्रहण की। ठीक उसी प्रकार ही श्रीरामानुज की किसी–किसी उक्ति को भी उन्होंने उद्‌धृत किया है, इससे वे रामानुज–सम्प्रदायी नहीं कहे जा सकते।

श्रीपाद जीवगोस्वामी ने क्रमसन्दर्भ में माध्वमत को ''प्रचुर प्रचारित वैष्णवमत–विशेष'' कहा है। श्रीजीवगोस्वामी यदि माध्वसम्प्रदाय को स्वीय सम्प्रदाय मानते तो वे माध्वमत को ''वैष्णवमत–विशेष'' न कहते।

दक्षिणदेश में भ्रमण करते समय तत्त्ववादी आचार्य के साथ साध्य–साधन सम्बन्ध में विचार प्रसंग में श्रीमन्महाप्रभु ने तत्त्ववादी से कहा–

''..............कर्मी, ज्ञानी, दुई भक्तिहीन।
तोमार सम्प्रदाये देखि सेई दुइ चिह्न।।
सबे एक गुण देखि तोमार सम्प्रदाये।
सत्य विग्रह ईश्वरे करह निर्णये।।

श्रीचै०च० २–९–२४६–२५०

यहाँ श्रीमन्महाप्रभु ने तत्त्ववादी माध्व–सम्प्रदाय को दो बार ''तोमार सम्प्रदाय'' कहकर पुकारा है। वे यदि माध्वसम्प्रदायभुक्त होते तो कभी भी ''तोमार सम्प्रदाय'' कहकर न पुकारते और न ही माध्वमत के दोषों को ही दिखाते।

आजकल कोई–कोई यह भी कहते हैं कि श्रीमन्मध्वाचार्य का भेदवाद ही है गौड़ीयों के अचिन्त्य–भेदाभेद का मूल। इसी कारण गौड़ीय–सम्प्रदाय

को माध्व–सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त अथवा उसकी शाखा कहा जाता है। किन्तु "भेदवाद ही अचिन्त्यभेदाभेद का मूल है" इस प्रकार का अनुमान बिल्कुल निराधार है (गौड़ीय वैष्णव दर्शन अनुच्छेद ४।३१) द्रष्टव्य है।

गौड़ीय–सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक–

गौड़ीय सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक कौन है ? श्रीकवि कर्णपूर रचित "श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक" में श्रीमन्महाप्रभु एवं श्रीपाद सार्वभौम भट्टाचार्य के बीच हुए कथोपकथन में यह निर्धारित हुआ है कि इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वयं श्रीकृष्णचैतन्य ही हैं।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद के "श्रीचैतन्यचन्द्रामृत" ग्रन्थ की टीका का उपसंहार करते हुए टीकाकार श्रीआनन्दी कहते हैं– *"स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यनामा तदुपासक–सम्प्रदायप्रवर्तको भवति। अतः श्रीकृष्ण–चैतन्यमहाप्रभुः स्वयं भगवानेव सम्प्रदायप्रवर्तकस्तत्पार्षदा एव साम्प्रदायिका गुरवो, नान्ये।।"*

इस उक्ति से स्पष्ट होता है कि श्रीमन्महाप्रभु स्वयं ही गौड़ीय–सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं। अतः इसे "श्रीचैतन्य सम्प्रदाय" कहना संगत ही है। पार्षद श्रीश्रीरूप–सनातनादि गोस्वामिगण इस सम्प्रदाय के आचार्य गुरु हैं।

गौड़ीय–सम्प्रदाय के ब्रह्मतत्त्व, जीवतत्त्व, सृष्टितत्त्व, ब्रह्म के साथ जीव–जगत् के सम्बन्ध विषयक तत्त्व, एवं ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व और परम–रसस्वरूपत्वादि तथा नारायणादि अन्य भगवत्–स्वरूपों के श्रीकृष्णांशत्वादि प्रतिपादित इन सर्वप्रकार के तत्त्वों का प्रचार श्रीमन्महाप्रभु ने ही किया है। अतएव वे ही इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं; ऐसा कहना कोई अयुक्त अथवा अस्वाभाविक नहीं है।

श्रीमन्महाप्रभु ने माध्वसम्प्रदाय के मत को "तेषां मतम्"–तुम्हारा मत कहा है–"हमारी सम्प्रदाय का मत" ऐसा नहीं कहा। इससे भी यह ज्ञात होता है कि माध्वसम्प्रदाय को प्रभु ने निज सम्प्रदाय कहकर स्वीकार नहीं किया। "उनका मत अनिन्दनीय नहीं है।" अर्थात् माध्वसम्प्रदाय का मत निन्दनीय है।

उपसंहार –

जिन कारणों से श्रीमन्महाप्रभु ने माध्व–सम्प्रदाय को निन्दनीय कहकर पुकारा, उन्हें स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

(१) प्रथमतः श्रीमध्वाचार्य वैकुण्ठाधिपति श्रीनारायण को ही परतत्त्व–स्वयं भगवान् स्वीकार करते हैं, श्रीकृष्ण की स्वयं भगवत्ता उन्हें स्वीकार नहीं, जबकि श्रुतिस्मृतियों ने श्रीकृष्ण की स्वयंभगवत्ता को स्वीकार किया है।

(२) द्वितीयतः श्रीमध्वाचार्य ने श्रीराधिकादि गोपीगण को भगवत्शक्ति रूप में स्वीकार नहीं किया है। उनके मत में श्रीराधिकादि गोपीगण अप्सरा स्त्री हैं। माध्वसम्प्रदाय के आधुनिक आचार्यों का भी यही अभिमत है, जैसा कि उड्डुपी के कानुरुमठाधीश श्रीविद्यासमुद्र तीर्थ महाराज के अभिमत से जाना जाता है। वे लिखते हैं–

"Radhika and Gopis are Apsara women"

"राधिका एवं गोपीगण अप्सरा स्त्री हैं।" यह अभिमत श्रुतिस्मृति विरुद्ध है।

(३) तृतीयतः–श्रीमध्वाचार्य ब्रह्मा को ही भक्ति में सर्वोपरि मानते हैं। श्रीबलदेव, देवकी, वसुदेव, नन्द–यशोदादि श्रीकृष्ण के परिकरगण को भक्ति में ब्रह्मा से भी निकृष्ट एवं ब्रजगोपीगण को सर्वापेक्षा निकृष्ट मानते हैं। (भागवत–तात्पर्य ११–१२–२२) यह मत भी श्रुतिस्मृति विरुद्ध है। बृहद्वामन पुराण में स्वयं ब्रह्माजी ने कहा है–

"पुराकाल में श्रीनन्द के ब्रजस्थित गोपियों की चरणरेणु प्राप्ति के लिए मैंने ६० हजार वर्षों तक तपस्या की थी तथापि मैं उनकी चरणरेणु प्राप्त न कर सका। मैं, शिव, शेष नामक अनन्त एवं स्वयं लक्ष्मी, कोई भी, कभी भी ब्रजगोपियों की समानता नहीं कर सकता।"

(४) चतुर्थतः–माध्वमत में मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है (गीताभाष्य द्वितीय अध्याय, भागवततात्पर्य ३–१५–४८, ३–२५–३२–३४)। किन्तु श्रुतिस्मृति प्रमाणों के आधार पर श्रीमन्महाप्रभु ने प्रेम को ही परम पुरुषार्थ स्वीकार किया है।

(५) पंचमतः–माध्वमत में केवला भक्ति ही मुक्ति का श्रेष्ठ उपाय है और उनके मत में केवलाभक्ति से तात्पर्य है–धर्म, अर्थ एवं काम अथवा लाभ–पूजा–प्रतिष्ठा आदि वासनाओं से रहित भक्ति। वस्तुतः यह मोक्षवाञ्छाहीन भक्ति नहीं है; कारण कि मोक्ष ही तो है उनका परम पुरुषार्थ। उड्डुपी के तत्त्ववादी आचार्यगण ने भी महाप्रभु से यही कहा था–

उड्डुपी के कानुरुमठाधीश श्रीविद्यासमुद्रतीर्थ महाराज के अभिमत सम्वलित पत्र दिनांकित २२–३–५२ ई० में ऐसा लिखा है। यह पत्र श्रीमद्सुन्दरानन्द विद्याविनोद के पास सुरक्षित है।

वर्णाश्रमधर्म कृष्णे समर्पण।
एई हय कृष्णभक्तेर श्रेष्ठ साधन।।
पञ्चविध मुक्ति पाञा वैकुण्ठगमन।
साध्यश्रेष्ठ हय एई शास्त्र–निरूपण।।

(श्रीचै०च० २।६।२३८–३६)।।

(६) छठा–माध्वमत में श्रीकृष्ण हतारिगतिदायक नहीं हैं, (भागवत–तात्पर्य

३–२५–३२/३४, ३–२–२४, ३–२–१४, सूत्रभाष्य ३–४–४०) किन्तु श्रीमद्भागवतादि शास्त्रों में श्रीकृष्ण "हतारिगति–दायक" हैं, पूतनादि उसके प्रमाण हैं।

(७) सातवाँ–"नामाभास से मुक्ति प्राप्त होती है।"–श्रीमन्मध्वाचार्य ऐसा स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं–भक्तिपूर्वक 'नारायण' नाम उच्चारण करने से अजामिल की मुक्ति हुई, पुत्र का नाम लेने से नहीं (भागवत–तात्पर्य ६–२–१४)। किन्तु यह कथन श्रीशुकदेवजी के वचनों के विरोधी हैं। श्रीशुकदेवजी ने कहा है–यमदूतों को देखकर अत्यन्त भयभीत होकर अजामिल ने नारायण नामक अपने पुत्र को पुकारा था। तब उसका मन अपने पुत्र में ही था, नारायण में नहीं (श्रीभा० ६।१।२६,२६)। उपसंहार में भी श्रीशुकदेवजी ने यही कहा है–

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्।।

(श्रीभा० ६–२–४६)

–म्रियमाण (मरते समय) अजामिल ने अपने पुत्र का नाम उच्चारण करके भी जब वैकुण्ठधाम प्राप्त कर लिया तब श्रद्धा सहित यदि नामसंकीर्तन किया जाय तो उसकी फल प्राप्ति के बारे में फिर कहा ही क्या जा सकता है ? इससे भी यही ज्ञात होता है कि अजामिल ने श्रद्धा अथवा भक्तिपूर्वक और नारायण को लक्ष्य करके नारायण का नाम नहीं लिया था बल्कि उसका लक्ष्य पुत्र ही था। श्रीशुकदेवजी ने यह भी कहा है कि यमदूतों एवं विष्णुदूतों में हुए कथोपकथन को सुनने के पश्चात् ही अजामिल में भक्ति का उदय हुआ (श्रीभा० ६।२।२४–२५) उससे पहले नहीं। इससे जाना जाता है नामाभास के विषय–सम्बन्ध में भी श्रीमध्वाचार्य का मत शास्त्र–विरुद्ध है।

इन्हीं कारणों से श्रीमन्महाप्रभु ने माध्वमत को निन्दनीय कहा है–यह स्पष्ट ज्ञात हो रहा है।

श्रीसार्वभौमभट्टाचार्य-उक्ति :–

वैराग्यविद्यानिजभक्तियोगशिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये।।
कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्तभृंगः।।

इन श्लोकों के द्वारा श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने इसी बात को स्पष्ट किया है कि पहले कल्प में जिस स्वविषयक भक्तियोग का प्रचार किया था। कालवश उसे लुप्तप्रायः हुआ जानकर उसी को ही पुनः प्रवर्त्तन करने के

उद्देश्य से तथा उस भक्तियोग की शिक्षा देने के लिए ही श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य अवतीर्ण हुए। गौड़ीय–सम्प्रदाय उसी भक्तियोग का ही अनुसरण करती है और श्रीमन्महाप्रभु ही उसके प्रवर्त्तक हैं।

पहले कई बार कह आये हैं कि श्रीपाद कविकर्णपूर ने अपने श्रीचैतन्य–चन्द्रोदय नाटक में महाप्रभु एवं भट्टाचार्य के कथोपकथन द्वारा यही सिद्ध किया है कि श्रीमन्महाप्रभु ही गौड़ीय–सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं। इस सम्बन्ध में कविकर्णपूर अपने श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक (१–६।८) में एक स्थान पर यह भी लिखते हैं–

''आश्चर्यं यस्य कन्दो यतिमुकुटमणिर्माधवाख्यो मुनीन्द्रः
श्रीलाद्वैतः प्ररोहस्त्रिभुवनविदितः स्कन्ध एवावधूतः।
श्रीमद्वक्रेश्वराद्या रसमयवपुषः स्कन्धशाखास्वरूपा
विस्तारो भक्तियोगः कुसुममथ फलं प्रेमनिष्कैतवं यत्।।
ब्रह्मानन्दं च भित्वा विलसति शिखरं यस्य यत्रात्तनीड़ं
राधाकृष्णाख्य–लीलामय खगमिथुनं भिन्नभावेन हीनम्।
यस्यच्छाया भवाध्वश्रमशमनकरी भक्तसंकल्पसिद्धे–
र्हेतुश्चैतन्यकल्पद्रुम इह भुवने कश्चन प्रादुरासीत्।।

–अहो ! कैसा आश्चर्य है यतिकुलमुकुटमणि माधव नामक (श्रीमाधवेन्द्र पुरी) मुनीन्द्र जिसके कन्द (मूल) हैं, श्रीअद्वैत जिसके अंकुर, त्रिभुवन विदित अवधूत (श्रीनित्यानन्द) ही जिसके स्कन्ध, श्रीवक्रेश्वर आदि रसमय भावित महाभागवतगण जिसके स्कन्धशाखा स्वरूप, विस्तृत भक्तियोग ही जिसके पुष्प, अकैतव प्रेम ही जिसका फल है, और अधिक क्या कहा जाए, जिसका शिखर ब्रह्मानन्द को भी भेद कर ऊपर विराजित है, अभिन्नस्वरूप श्रीराधाकृष्णरूप लीलामय विहंगयुगल (पक्षीयुगल) जिसमें नीड़ (घौंसला) रचना कर विराजित हैं, जिसकी छाया संसार में भ्रमणजनित श्रम को दूर करने वाली है, और जो भक्तों के संकल्प की सिद्धि करने वाला है, वही कोई एक अपूर्व श्रीचैतन्यकल्पतरु इस भूमण्डल पर अवतीर्ण होकर विराजमान है।

इस प्रकार यहाँ गौड़ीय–सम्प्रदाय के उपास्य, परम पुरुषार्थ एवं उसके साधन के बारे में कहा गया है। नाम–संकीर्तन–प्रधान भक्तियोग गौड़ीय–सम्प्रदाय द्वारा ही अपनाया गया साधन विशेष है। इस साधन विशेष को प्रवर्त्तन करना ही श्रीकृष्णचैतन्य के अवतीर्ण होने का उद्देश्य था। इससे गौड़ीय–सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्रीकृष्णचैतन्य ही निश्चित होते हैं।

कविकर्णपूर रचित गौरगणोद्देशदीपिका के जो आजकल प्रकाशन प्राप्त हैं उनमें कुछ एक श्लोक ऐसे हैं जिनमें यह जनाया गया है कि कलि में केवल चार ही वैष्णव–सम्प्रदाय हैं इनसे अधिक नहीं। परन्तु कवि कर्णपूर ने ही

अपने रचित श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक में जो अपना अभिमत व्यक्त किया है, वह इसका विरोधी है; अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के श्लोक स्वयं कवि कर्णपूर द्वारा रचित नहीं हैं। वे क्षेपक हैं, जो इस प्रकार हैं:-

प्रादुर्भूताः कलियुगे चत्वारः साम्प्रदायिकाः।
श्री-ब्रह्म-रुद्र-सनकाह्वयाः पाद्मे यथा स्मृताः।।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः।
श्री-ब्रह्म-रुद्र-सनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः।।

इस श्लोक से जाना जाता है कि पद्मपुराण में ऐसा कहा गया है, किन्तु अनेक अनुसन्धान करने पर भी पद्मपुराण में कहीं भी यह श्लोक प्राप्त नहीं है।

यह प्रश्न हो सकता है कि वर्तमान पद्मपुराण में यह श्लोक प्राप्त नहीं है तो हो सकता है कविकर्णपूर के समय में प्राप्त प्रतियों में रहा हो। यदि ऐसा होता तो श्रीमहाप्रभु एवं सार्वभौम भट्टाचार्य भी इससे अनभिज्ञ नहीं रहते; फिर वे इसे अलग सम्प्रदाय क्यों निर्धारित करते ? गौड़ीय-सम्प्रदाय के आदि आचार्यों एवं श्रीमहाप्रभु के अनुयायियों ने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर पद्मपुराण के अनेकों श्लोकों को, वचनों को उद्धृत किया है किन्तु इस प्रकार का वैष्णव-सम्प्रदायों की सीमाबद्धता वाचक कोई भी श्लोक अथवा इस प्रकार का कोई भी मर्म कहीं भी उद्धृत नहीं मिलता। सभी के द्वारा और विशेषकर कवि कर्णपूर द्वारा भी सम्प्रदाय की सीमाबद्धता को स्वीकार नहीं किया गया। फिर वही कर्णपूर अपनी गौरगणोद्देशदीपिका में चार-सम्प्रदायों की बात लिखें; यह विश्वास के योग्य नहीं है, वस्तुतः यह श्लोक पद्मपुराण का ही नहीं है। क्षेपक मालूम देता है।

इस विषय में श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद अपने द्वारा रचित ''अचिन्त्य-भेदाभेदवाद'' पुस्तक में, जो सन् १९५० में प्रकाशित हुई पृष्ठ २१३-१४ पर लिखते हैं:-

प्रायः ३० वर्ष अर्थात् १९२० सन् में वृन्दावन श्रीराधारमणघेरा निवासी श्रीमधुसूदनदास गोस्वामी सार्वभौम महाशय ने पद्मपुराण के नाम से प्रसिद्ध "श्री-ब्रह्म-रुद्र-सनकाः" इत्यादि श्लोक को कहीं भी पद्मपुराण में देखकर श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी को एक पत्र लिखा था कि उपर्युक्त श्लोक का पद्मपुराण में कहाँ उल्लेख है, उसका स्थान परिचय दीजिये। तब श्रीसरस्वतीपाद के कई सहकारी पण्डितों के साथ मैंने पद्मपुराण के विभिन्न संस्करण जगह-जगह जाकर पूरे ध्यान से देखे थे, किन्तु कहीं भी किसी संस्करण में सम्प्रदायों की चार संख्या का वाचक श्लोक नहीं प्राप्त हुआ। अन्त में श्रीमदभक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाशय ने वृन्दावन में श्रीमधुसूदन

दास गोस्वामी को उत्तर में लिख दिया कि यह श्लोक पद्मपुराण के किसी भी संस्करण में प्राप्त नहीं है।

श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद का यह कथन इस बात का ठोस प्रमाण है कि "श्री–ब्रह्म–रुद्र–सनका" इत्यादि श्लोक पद्मपुराण का नहीं, किसी संकीर्ण चित्त व्यक्ति के द्वारा स्वार्थसिद्धि के लिए रचा गया है और गौरगणोद्देशदीपिका में घुसा दिया गया है। यही एक श्लोक नहीं १४ श्लोक और भी घुसाये गये हैं, एवं उनकी क्रम संख्या छोड़ दी गयी है। २० संख्यक श्लोक के बाद ग्यारह श्लोक बिना नम्बर के हैं। फिर २२ से २५ नम्बर दिये गये हैं। वस्तुतः २० संख्यक श्लोक का उनसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। २०वें श्लोक का सम्बन्ध है २६ वें श्लोक के साथ। २० वें श्लोक में कहा गया है–जो द्वापर युग में श्याम वर्ण धारण कर श्याम–नाम से पुकारे जाते थे, वही कलियुग में गौरचन्द्र नाम से अवतीर्ण होकर विराजते हैं। २६ वें श्लोक में कहा गया है–इस प्रकार श्रीनन्दनन्दन ही सुदुष्कर श्रीराधा की भाव–कान्ति को अन्दर–बाहर स्वीकार कर गौरांगरूप में अवतीर्ण हुए हैं। बीच के २१ से २५ श्लोकों का इन श्लोकों से कुछ सम्बन्ध नहीं है। इन श्लोकों में माध्व सम्प्रदाय की गुरु परम्परा का उल्लेख है जो अशुद्ध है। इस गुरु परम्परा में व्यासतीर्थ के शिष्य माधवेन्द्रपुरी को कहा गया है। किन्तु माध्वसम्प्रदाय के किसी भी मठ में ऐसा स्वीकार नहीं किया गया[1]।

आगे कहा गया है कि श्रीमध्वाचार्य ने "शतदूषणी नामक संहिता" की रचना कर निर्गुण ब्रह्म का खण्डन कर सगुणब्रह्म की स्थापना की थी। किन्तु श्रीपाद जीवगोस्वामी ने श्रीभा० १०–८७–२ श्लोक की टीका करते हुए संक्षेप वैष्णवतोषणी टीका में शतदूषणी को श्रीसम्प्रदाय का ग्रन्थ बताया है।

"श्रीवैष्णवानां श्रीभाष्य–तदीयटीकयोः शतदूषण्यादिषु"–इत्यादि। श्रीराजेन्द्रनाथ घोष "अद्वैतसिद्धि" की भूमिका में लिखते हैं कि मध्वाचार्य के अनेक समय बाद गौड़पूर्णानन्दकवि चक्रवर्ती ने (व्यासतीर्थरचित) न्यायामृत का अनुसरण कर रंगदेश में "मायावादशतदूषणी" और "तत्त्वमुक्तावली" नामक ग्रन्थों की रचना की। मध्वाचार्य ने भी इसका नाम कहा है। जो भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि शतदूषणी अथवा मायावादशतदूषणी आनन्दतीर्थ नामक मध्वाचार्य द्वारा रचित नहीं है।

इस गुरुपरम्परा में ऐसा भी उल्लिखित है कि श्रीमाधवेन्द्र (श्रीमाधवेन्द्र पुरी) माध्व–सम्प्रदाय के अन्तर्गत थे, उनके शिष्य ईश्वरपुरी एवं उनके शिष्य हुए श्रीगौरचन्द्र। किन्तु माध्वसम्प्रदायान्तर्गत संन्यासियों में सर्वत्र "तीर्थ"

---

१. श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद रचित 'अचिन्त्यभेदाभेद' ग्रन्थ में माध्वसम्प्रदाय की चार प्रकार की गुरुपरम्पराएँ प्रकाशित की गयी हैं, जो एक दूसरे से भिन्न हैं (पृष्ठ २२१–२२३) द्रष्टव्य।

उपाधि का प्रचलन है। इस सम्प्रदाय में "पुरी" उपाधि कभी भी प्रचलित नहीं थी, आज भी नहीं है।

माध्वमत में वैकुण्ठाधिपति श्रीनारायण ही स्वयं भगवान् हैं, श्रीकृष्ण की स्वयं-भगवत्ता मध्वमत में स्वीकार नहीं है। वे श्रीकृष्ण की स्वयं भगवत्ता को ही स्वीकार नहीं करते और श्रीराधिकादि गोपीगण को विष्णुशक्ति रूप में भी नहीं स्वीकारते। माध्व-सम्प्रदाय में श्रीराधाकृष्ण की उपासना का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी एवं श्रीपादईश्वर पुरी संन्यासी होते हुए भी श्रीराधाकृष्ण-उपासक थे, इसमें दो मत नहीं हैं। 'पुरी' उपाधियुक्त एवं श्रीराधाकृष्ण-उपासक श्रीपादमाधवेन्द्रपुरी एवं श्रीपाद ईश्वर पुरी को माध्व सम्प्रदाय में गिनना उचित नहीं जान पड़ता।

इस गुरु परम्परा में यह भी लिखा गया है कि "श्रीमध्वाचार्य ने श्रीव्यासदेव से कृष्णमन्त्र की दीक्षा ली थी।" किन्तु यह बात सत्य से परे है। माध्व-सम्प्रदाय के ग्रन्थों में ही कहा गया है कि श्रीमन्मध्वाचार्य के गुरु थे श्रीपादअच्युतप्रेक्ष। यदि वे कृष्णमन्त्र द्वारा दीक्षित होते तो वे श्रीकृष्ण-उपासना ही करते किन्तु ऐसा नहीं है, वे थे श्रीनारायण उपासक। माध्वसम्प्रदाय में श्रीकृष्ण-उपासना न पहले कभी प्रचलित थी न अब है। इसलिए उपर्युक्त श्लोक जो गौरगणोद्देशदीपिका में समाविष्ट हैं। वे स्वयं कवि कर्णपूर रचित आगे पीछे के श्लोकों के प्रसंग से विरुद्ध हैं। अतः उन्हें कविकर्णपूर द्वारा रचित नहीं माना जाना चाहिए।

श्रीमुरारी गुप्त एवं श्रीवृन्दावनदास ठाकुर का अभिमत-

श्रीमन्महाप्रभु के पार्षद श्रीमुरारिगुप्त संस्कृत में श्रीमहाप्रभु का चरित्र लिखने वाले अग्रणी हैं और व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुर हैं बंगला भाषा में श्रीमहाप्रभु के चरित्र का वर्णन करने में सर्वप्रथम। इन दोनों में से किसी ने भी श्रीमहाप्रभु को अथवा गौड़ीय-सम्प्रदाय को माध्वसम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त नहीं कहा और न ही श्रीमाधवेन्द्र पुरी को।

श्रीसनातन गोस्वामीपाद का अभिमत-

श्रीभागवत (१०-१२-१) श्लोक की टीका करते हुए बृहद्वैष्णवतोषणी में श्रीपाद सनातन गोस्वामी ने प्रतिवादस्वरूप माध्वमत का खण्डन किया है। श्रीगोस्वामीपाद के अन्यान्य ग्रन्थों में भी जो समस्त तत्त्व निरूपण किये गये हैं, साध्य-साधनादि एवं परमार्थ विषय में वे सब माध्वमत के विरोधी हैं।

श्रीपाद रूपगोस्वामी का अभिमत-

"अनिर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।" इत्यादि श्लोक में श्रीगोस्वामीपाद ने कहा है-"अनेक समय

से जो प्रदान नहीं की गई, उस अपनी उन्नत–उज्ज्वल–रसस्वरूपा भक्तिसम्पत्ति को देने के लिए ही श्रीमहाप्रभु कलि में अवतीर्ण हुए। वह उन्नत–उज्ज्वल रसस्वरूपा भक्ति सम्पत्ति क्या है ? वह है व्रजप्रेम और उसमें भी फिर अपूर्व विशेषत्वमय कान्ताप्रेम। यही व्रजप्रेम ही गौड़ीय–वैष्णव सम्प्रदाय का साध्य–तत्त्व है। श्रीमहाप्रभु ने पूर्व–पूर्व कल्पों की भाँति ही इस कलि में भी उसे वितरण किया तथा उसकी प्राप्ति के उपायस्वरूप नित्यसिद्ध व्रजपरिकर की आनुगत्यमयी उत्तमा साधनभक्ति की भी जीव–जगत् को जानकारी दी। इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ही गौड़ीय–वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक सिद्ध होते हैं न कि श्रीमन्मध्वाचार्य। यदि यह कहा जाय कि श्रीमन्मध्वाचार्य के आनुगत्य में यह सब किया गया, तो यह भी सत्य नहीं, क्योंकि व्रजप्रेम के आश्रयस्वरूप जो व्रजपरिकरगण हैं उनके भक्ति के उत्कर्ष को ही श्रीमध्वाचार्य स्वीकार नहीं करते हैं, व्रजगोपीगण की भक्ति को उन्होंने सबसे निकृष्ट स्वीकार किया है। यहाँ तक कि व्रजगोपियों को उन्होंने अप्सरास्त्री कहके सम्बोधित किया है। प्रेम की महिमा को भी वे स्वीकार नहीं करते हैं। व्रजपरिकर की आनुगत्यमयी उत्तमा साधनभक्ति का उल्लेख तक भी उनके मत में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। श्रीश्रीराधाकृष्ण की उपासना के बारे में भी कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। उडूपीमठ के पत्र में स्पष्टरूप से लिखित है–

"Sri Krishna with Sri Radhika is not worshipped in our Sampradaya ."

–"हमारी सम्प्रदाय (अर्थात् माध्वसम्प्रदाय में) श्रीराधा सहित श्रीकृष्ण की उपासना नहीं की जाती है।"

व्रजपरिकर एवं विशेषरूप से व्रजगोपियों के सम्बन्ध में श्रीमध्वाचार्य ने जो कुछ कहा है, भक्तिरसामृतसिन्धु एवं उज्ज्वलनीलमणि प्रभृति ग्रन्थों में श्रीपादरूपगोस्वामी ने उसका तीव्र विरोध किया है। उन्होंने भी गौड़ीय–सम्प्रदाय को माध्वसम्प्रदाय अन्तर्भुक्त स्वीकार नहीं किया है।

श्रीपाद जीवगोस्वामी का अभिमत–

श्रीपाद जीवगोस्वामी ने तो स्वरचित ''सर्वसम्वादिनी' के प्रारम्भ में ही ''*स्व–सम्प्रदायसहस्राधिदैवम्*'' कहकर वर्णन किया है। ''*महाभागवत–कोटिबहिरन्तर्दृष्टि–निष्टंकित भगवद्भावं निजावतार–प्रचार–प्रचारित–स्वस्वरूप–भगवदपदकमलावलम्बिदुर्लभ–प्रेमपीयूषमय–गंगाप्रवाह–सहस्रं–स्वसम्प्रदाय–सहस्राधिदैवं श्रीश्रीकृष्णचैतन्यदेवनामानं श्रीभगवन्तं कलियुगेऽस्मिन् वैष्णवजनोपास्यावतारतयार्थविशेषालिंतेन श्रीभागवत–पद्यसंवादेन स्तौति 'कृष्णेति'* कोटि–कोटि महाभागवतों ने बहिर्दृष्टि एवं अन्तर्दृष्टि द्वारा जिनकी भगवत्ता को सुनिश्चित किया है, भगवत्ता ही जिनका निजस्वरूप है, जो स्वयं

भगवान् के चरणकमलों का अवलम्बन कर अन्यत्र दुर्लभ सहस्र–सहस्र प्रेमामृतमयी गंगा धारा है उसका स्वयं अवतरित होकर जिन्होंने वितरण किया है, जो स्वकीयसम्प्रदाय के परम अधिदेवता हैं, उन्हीं श्रीकृष्णचैतन्य नामधारी श्रीभगवान् को ही श्रीमद्भागवत शास्त्र ने इस कलियुग में वैष्णवगणों के उपास्य रूप में निर्णीत किया है एवं विशिष्ट रूप से (*कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णमित्यादि* श्लोक में) उनकी स्तुति की है।–''श्रीरसिकमोहन विद्याभूषणकृत अनुवाद साहित्यपरिषद् संस्करण।''

यहाँ श्रीकृष्णचैतन्य को जो वैष्णवों का उपास्य कहा गया है, वे वैष्णव कौन से हो सकते हैं–वे हैं एकमात्र गौड़ीय–वैष्णव। गौड़ीय वैष्णव ही सर्वतोभाव से श्रीमन्महाप्रभु की उपासना करते हैं। स्व–सम्प्रदाय से तात्पर्य भी गौड़ीय–सम्प्रदाय से ही है। वे इस गौड़ीय–सम्प्रदाय के सहस्त्राधिदेव हैं, सर्वाभीष्ट प्रदाता हैं। गौड़ीय–वैष्णवों का मूल अभीष्ट है–श्रीश्रीगौरसुन्दर एवं श्रीश्रीराधाकृष्ण सेवा। *''एथा गौरचन्द्र पाय, सेथा राधाकृष्ण।''* श्रीगौर की उपासना से ही श्रीगौरांग की सेवा, श्रीगौरप्रेम प्राप्त हो सकता है और गौरप्रेम प्राप्त होने पर श्रीश्रीराधाकृष्ण चरणसेवा भी प्राप्त हो जाती है। *''गौरप्रेम रसार्णवे, से तरंगे जेवा डूबे, से राधामाधव अन्तरंग।''* इस प्रकार गौड़ीय–सम्प्रदाय को महाप्रभु की स्वसम्प्रदाय–अपनी सम्प्रदाय कहा गया है।

षड्सन्दर्भादि अनेक ग्रन्थों में भी श्रीगोस्वामीपाद ने नन्द– यशोदा–सुबल–मधुमंगल–श्रीराधिकादि–व्रजगोपियों का नित्य–परिकरत्व स्थापन कर, व्रजगोपियों की स्वरूपशक्ति का प्रतिपादन कर, व्रजपरिकर के प्रेमोत्कर्ष एवं व्रजगोपियों के प्रेम के सर्वोत्कर्ष को प्रतिपादन कर, श्रीकृष्ण की स्वयं भगवत्ता को स्थापित कर एवं श्रीकृष्ण के उपास्यत्व का प्रतिपादन कर इन समस्त विषयों में माध्वमत का तीव्र विरोध किया है, इस प्रकार गौड़ीय सम्प्रदाय के माध्व सम्प्रदाय के अन्तर्गत होने को अस्वीकार ही किया है।

श्रीश्रीनाथ चक्रवर्त्ती का अभिमत–

कविकर्णपूर के दीक्षागुरु श्रीपाद श्रीनाथ चक्रवर्त्ती श्रीचैतन्यमतमञ्जूषा में लिखते हैं–

''आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्–
इत्थं गौरमहाप्रभोर्मतमतस्तत्रादरो नः परः।।''

परापरत्वं श्रीकृष्णे नित्यविग्रहलीलता। प्राधान्यं भगवद्भक्तेः प्रेम्णि तत्फलरूपता। प्रेमाकारा वृत्तिरेव भक्तेष्वेकात्मतालभि। गोपीषूत्तमभक्तित्वं रुक्मिणीप्रभृतिष्वपि। श्रैष्ठ्यं सर्वपुराणेभ्यः स्वस्मिन् भागवताभिधे। इति

श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रस्य मतमुत्तमम्।।"

—परात्परतत्त्व हैं व्रजेशतनय—श्रीकृष्ण, वे ही आराध्य हैं, व्रजवधूवर्ग सहित श्रीकृष्ण—उपासना ही रम्या, सर्वश्रेष्ठ है, भगवत्भक्ति की ही प्रधानता है। एकमात्र प्रेम ही उसका फल है, प्रेम ही परम पुरुषार्थ है। रुक्मिणी आदि महिषीगण से भी व्रजगोपियों की उत्तम भक्ति है। श्रीभागवत इसमें प्रमाणस्वरूप है। यही श्रीगौरांग महाप्रभु का उत्तम अभिमत है और यही मत मान्य है, अन्य मत आदरणीय नहीं है।

यहाँ ऊपर जिन बातों का प्रतिपादन किया गया है, उनमें से एक भी माध्वमत में स्वीकृत नहीं है, बल्कि समस्त ही माध्वमत की विरोधी हैं। अतएव श्रीचक्रवर्त्तीपाद का कथन भी यही है कि महाप्रभु का मत माध्वमत के अनुरूप नहीं है बल्कि उसका विरोधी है। फिर महाप्रभु मतानुयायी गौड़ीयवैष्णव सम्प्रदाय माध्वसम्प्रदाय के अनुगत कैसे हो सकती है?

श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती का अभिमत—

श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती श्रीचैतन्यचन्द्रामृत में लिखते हैं—

"प्रेमानामाद्भुतार्थः कस्य श्रवणपथगतः
नाम्नां महिम्नः को वेत्ता,
वृन्दावनविपिनमाधुरीषु कस्य प्रवेशः।
को वा जानाति राधां परमरस
चमत्कारमाधुर्य सीमामेकश्चैतन्यचन्द्रः
परमकरुणया सर्वमाविश्चकार।।१३०।।

प्रेम नामक परमपुरुषार्थ की बात क्या पहले कभी किसी के द्वारा सुनी गयी थी? नाम की अद्भुत महिमा क्या इससे पहले कोई जानता था? किसी ने भी क्या वृन्दाविपिन माधुरी में पहले अवगाहन किया था? परमरस—चमत्कार माधुर्य सीमा श्रीराधा से कोई परिचित था क्या? श्रीचैतन्य महाप्रभु ने ही करुणा करके इन सब विषयों को जीवों के समक्ष रखा।

इस प्रकार सरस्वतीपाद ने वाक्यभंगी द्वारा माध्वमत का प्रतिवाद किया है। वर्तमान कलि में उसी को ही नवीनरूप में उन्होंने फिर उसे जनाया है।

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी का अभिमत—

श्रीकृष्णदास कविराज श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत में श्रीमन्महाप्रभु के अवतार—प्रसंग में लिखते हैं, (आदि खण्ड ३४ परि०)—

व्रजप्रेम प्रदान करने के निमित्त, युगधर्म नामसंकीर्तन के प्रचार के निमित्त, स्वयं आचरण कर जगत् के जीवों को भक्ति धर्म अनुष्ठान करने की

शिक्षा देने के निमित्त ही श्रीकृष्णचैतन्य अवतीर्ण हुए। किस साधन से व्रजप्रेम की प्राप्ति सम्भव है, स्वयं आचरणकर उन्होंने जीवजगत् को इसकी शिक्षा दी। गौड़ीय–वैष्णव सम्प्रदाय का साधन है–व्रजप्रेम प्राप्ति का साधन; सालोक्यादि मुक्ति प्राप्ति का साधन नहीं है। इस साधन के उपदेष्टा एवं स्वयं आचरण कर उसकी शिक्षा देने वाले एकमात्र श्रीमन्महाप्रभु ही हैं। श्रीमन् मध्वाचार्य इस साधन के प्रवर्त्तक नहीं हैं। कारण कि वे तो व्रजप्रेम की महिमा तक को भी स्वीकार नहीं करते; वे मुक्ति की महिमा को स्वीकार करते हैं। मुक्ति को व्रजप्रेमाकांक्षी भक्त व्रजप्रेम की तुलना में अति तुच्छ मानते हैं। व्रजप्रेम के अनादिसिद्ध आश्रय व्रजपरिकर की भक्ति को भी श्रीमध्वाचार्य निम्नस्तर की भक्ति मानते हैं।

श्रीचैतन्यचरितामृत के आदि खण्ड, नवम परिच्छेद में भक्तिकल्पतरु का वर्णन करते हुए गोस्वामीपाद कहते हैं–

श्रीचैतन्य मालाकार पृथिवीते आनि।
भक्तिकल्पतरु रोपिला सिञ्चि इच्छा–पानि।।

श्रीचै० चरि० (१–९–७)

उन्होंने श्रीपादमाधवेन्द्रपुरी को ही इस भक्तिकल्पतरु का "प्रथम अंकुर कहा है। श्रीपाद ईश्वरपुरी को "पुष्ट अंकुर" एवं स्वयं श्रीचैतन्य को "स्कन्ध" कहा है।

"सकल शाखार सेई स्कन्ध मूलाश्रय।।" (१–९–१०)

–सर्वश्रीपरमानन्द पुरी, केशवभारती, ब्रह्मानन्दपुरी, ब्रह्मानन्द भारती, विष्णुपुरी, केशवपुरी, कृष्णानन्दपुरी, नृसिंह तीर्थ एवं सुखानन्दपुरी–इन नौ तनों को उस भक्तिकल्पतरु के मूल या शिखा कहकर वर्णन किया है। यहाँ कहीं भी श्रीमध्वाचार्य का नामोल्लेख तक नहीं है। इस प्रकार कविराज के मतानुसार गौड़ीय सम्प्रदाय के साथ माध्वसम्प्रदाय का किसी प्रकार भी कोई सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता।

उपर्युक्त आलोचना में प्रथम श्रीमन्महाप्रभु का स्वयं का अभिमत, तदुपरान्त उनके पार्षदों एवं गौड़ीय सम्प्रदाय के आदि आचार्यों के अभिमत व्यक्त किये गये हैं। अब कुछ एक परवर्ती आचार्यों के अभिमत को व्यक्त करते हैं–

श्रीपाद ईश्वरी का अभिमत–

श्रीपादप्रबोधानन्द सरस्वती रचित श्रीचैतन्यचन्द्रामृत के "*दृष्टं न शास्त्रं गुरवो न द्रष्टा*"–इत्यादि अंतिम श्लोक की टीका में श्रीपाद ईश्वरी ने श्रीपाद सार्वभौम भट्टाचार्य के "*वैराग्यविद्या निजभक्तियोगं शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः*" इत्यादि एवं "*कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्यनामा*" इत्यादि तथा श्रीविदग्धमाधव नाटक के "*अनर्पितचरीं चिरात्*" इत्यादि श्लोकों को

उद्धृत कर अन्त में लिखा है– *"अतः श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुः स्वयं भगवान् एव सम्प्रदायप्रवर्त्तकस्तत्पार्षदा एवं साम्प्रदायिका गुरवो नान्ये।"* अतएव उपर्युक्त तीनों श्लोकों से यही जाना जाता है कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ही सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं और उनके पार्षद ही साम्प्रदायिक गुरु हैं अन्य कोई नहीं।

श्रीपाद ईश्वरी ने श्रीचैतन्यचन्द्रामृत के *"ब्रह्मेशादि महाश्चर्यमहिमापि"*– इत्यादि १४१ वें श्लोक की टीका में गौरगणोद्देशदीपिका का उल्लेख किया है। गौरगणोद्देशदीपिका की उन्होंने आलोचना और उसके आदर्श का उन्होंने दिग्दर्शन कराया है। उससे वैष्णवों की चार सम्प्रदायों में सीमाबद्धता सूचक अथवा गौड़ीय सम्प्रदाय के माध्वसम्प्रदाय के अन्तर्गत होने की किसी बात का भी परिचय नहीं मिलता। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में विद्यमानता का प्रमाण श्रीईश्वरी ने स्वयं अपने रचित "शीघ्रबोध व्याकरण" में दिया है। *"कृतमानन्दिना शीघ्रप्रबोधं व्याकरणं लघु। शाके कलावेदशून्ये निलाद्रौ वटनागरे।।"* अर्थात् १६४० शकाब्द (१७९८ सन्) में उन्होंने शीघ्रप्रबोध व्याकरण लिखा।–यदि उस समय प्राप्त गौरगणोद्देशदीपिका में उक्त आलोच्य श्लोक *"प्रादुर्भूता कलियुगे"*–इत्यादि होता तो वे उसकी आलोचना अवश्य करते। अतः स्पष्ट है कि यह श्लोक बाद में किसी ने रच कर गौरगणोद्देशदीपिका में घुसा दिया है।

अद्वैतवंशीय प्रभुपाद श्रीराधामोहन गोस्वामी भट्टाचार्य का अभिमत–

महामहोपाध्याय श्रीहरप्रसाद शास्त्री कहते हैं कि श्रीराधामोहन गोस्वामी उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में विद्यमान थे, बंग साहित्य (वारेन्द्रब्राह्मण काण्ड, प्रथमभाग, द्वितीय अंश) के मत में वे १७३७, शकाब्द (१८१५ सन्) पर्यन्त जीवित थे। उन्होंने "तत्त्वसंग्रह" नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी। उसमें उन्होंने लिखा है– *"श्रीअद्वैतवंश्येन राधामोहनशर्मणा। प्रणम्य राधिकाकान्तं क्रियते तत्त्वसंग्रहः।।"* वे श्रीअद्वैताचार्य के वंश की सातवीं पीढ़ी में थे। उन्होंने श्रीपादजीव गोस्वामी के तत्त्वसन्दर्भ पर भी एक टीका लिखी थी। टीका के प्रारम्भ में उन्होंने श्रीगौर को ही गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक रूप में स्थापित किया है।– *"स्वभजनस्य सम्प्रदायप्रवर्त्तनायावतीर्णं गौररूपेण श्रीकृष्णम्"* इत्यादि।

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य द्वारा श्रीमन्मध्वाचार्य की वन्दना का अभाव–

किसी भी गौड़ीय वैष्णवाचार्य ने अपने किसी ग्रन्थ के आरम्भ में श्रीमन्मध्वाचार्य की वन्दना नहीं की। सबने श्रीकृष्ण, श्रीमहाप्रभु, गौरपरिकरादि एवं वैष्णवगणों की ही वन्दना की है। यदि श्रीमन्मध्वाचार्य को ही स्वसम्प्रदायाचार्य या स्वसम्प्रदायप्रवर्त्तक रूप में वे स्वीकार करते तो अवश्य ही इस रूप में

उनकी वन्दना करते। इससे भी उन समस्त की गौड़ीय सम्प्रदाय के माध्व–सम्प्रदायान्तर्गत होने की अस्वीकृति प्रमाणित होती है।

नित्यानन्दवंशीय प्रभुपाद श्रीसत्यानन्द गोस्वामी का अभिमत–

प्रभुपाद श्रीसत्यानन्द गोस्वामी के द्वारा सन् १६२६ में श्रीभगवत् सन्दर्भ सम्पादित और प्रकाशित हुआ। उसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है–'' लक्ष्मी–ब्रह्मा से जिनकी सम्प्रदाय प्रवर्त्तित है, उस सम्प्रदाय के किसी प्रवर्त्तक आचार्य की सम्प्रदाय में स्वयं भगवान् श्रीमन्महाप्रभु कैसे अन्तर्भुक्त हो सकते हैं? जगत् को प्रकाशित करने वाला सूर्य कभी खद्योत की ज्योति के अन्तर्भुक्त हो सकता है या उसके माध्यम से परिचित हो सकता है क्या ?–कभी नहीं। श्रीमन्महाप्रभु के नित्य पार्षदों ने–छह गोस्वामिपाद की या श्रीमन्महाप्रभु की प्रेरणा से जिन समस्त ग्रन्थों की रचना की है, उनको आद्योपान्त देखने से गौड़ीय सम्प्रदाय का माध्व सम्प्रदाय से कुछ भी सम्बन्ध नहीं पाया जाता। अतः गौड़ीय सम्प्रदाय माध्व सम्प्रदाय से पृथक् एक सम्प्रदाय है।

श्रीपादबलदेव विद्याभूषण का अभिमत–

(समय एवं विवरण) श्रीपादबलदेव विद्याभूषण ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। श्रीरूप गोस्वामीपाद द्वारा रचित स्तवमाला की टीका भी उन्होंने लिखी। स्तवमाला अन्तर्गत 'उत्कलिकावल्लरी' नामक स्तव की टीका में वे स्वयं लिखते हैं–''*षड़शीत्युत्तर–षोड़शशतीगणिते तस्य '१६८६' श्लोके तु ॐ नमः टीकाया निष्पत्तिः।।* बहरमपुर संस्करण–१३१६ साल, २६०–६१ पृष्ठ।।'' अर्थात् १६८६ शकाब्द यानि १७६४ सन् में उन्होंने यह टीका लिखी। इससे अनुमान लगता है कि श्रीबलदेव विद्याभूषण १८ वीं शताब्दी के तृतीयचरण में मौजूद थे। पहले कहा जा चुका है कि श्रीईश्वरीपाद १८ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में विद्यमान थे। यदि ऐसा है तो ये दोनों समसामयिक हुए किन्तु समसामयिक होते हुए भी श्रीबलदेव विद्याभूषण श्रीपाद ईश्वरी से आयु में बहुत छोटे रहे होंगे; किन्तु अद्वैतवंशीय प्रभुपाद श्रीराधामोहन गोस्वामी से पूर्ववर्ती थे; अर्थात् श्रीबलदेव विद्याभूषण का समय श्रीपाद ईश्वरी एवं श्रीराधामोहन गोस्वामीपाद के मध्य का निश्चित होता है।

वेदवेदान्त–दर्शन–काव्य–व्याकरण–अलंकार आदि शास्त्रों में श्रीपादबलदेव विद्याभूषण का असाधारण पाण्डित्य था। वे पहले माध्वसम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। बाद में श्रीश्यामानन्द परिवार में कान्यकुब्जीय ब्राह्मण श्रीराधादामोदरदास से उन्होंने श्रीपाद जीवगोस्वामी के षड्सन्दर्भ का अध्ययन किया। तब वे श्रीश्रीराधाकृष्ण की उपासना के लिए लालायित हो उठे और श्रीराधा–दामोदरदासजी से ही व्रजभावमय कान्ताभाव के उपासना मन्त्र की दीक्षा लेकर वे गौड़ीय सम्प्रदाय में शामिल हो गये। कुछ समय बाद वे वृन्दावन

गये। श्रीवृन्दावन में उन्होंने श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्त्ती से श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया। जब वे वृन्दावन में थे उसी समय जयपुर में श्रीगोविन्ददेव जी की सेवा के सम्बन्ध में गौड़ीय वैष्णवों के साथ कुछ विवाद उठ खड़ा हुआ।

जयपुर में विचार-सभा एवं गोविन्दभाष्य-प्रणयन-

श्रीपाद रूपगोस्वामी द्वारा प्रकटित श्रीगोविन्ददेव यवनों के विप्लव के कारण श्रीवृन्दावन से जयपुर ले जाए गये। जयपुर महाराज ही को वहाँ सेवा का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। किन्तु सेवा गौड़ीय-वैष्णवों द्वारा ही सम्पन्न होती थी। जयपुर के निकटवर्ती गलता औपत्यकार तलहटी-निवासी रामानुज सम्प्रदाय के महन्तों ने गौड़ीय-वैष्णवों को श्रीगोविन्दजी की सेवा से हटाने के लिए विवाद खड़ा कर दिया।

विवाद के विषय में दो बातें कही जाती हैं। एक तो यह कि गौड़ीय-वैष्णव श्रीनारायण से पहले श्रीगोविन्दजी की पूजा करते थे। दूसरे यह है कि वे गौड़ीय-वैष्णवों को असाम्प्रदायिक मान कर उनको श्रीगोविन्दजी की सेवा करने का अनधिकारी बताने लगे। विवाद का दूसरा कारण ही मुख्य था।

जयपुराधिपति महाराज द्वितीय जयसिंह के समय में यह विवाद खड़ा हुआ था। विवाद को निपटाने के लिए महाराज ने एक सभा बुलायी और गौड़ीय-वैष्णवों की ओर से कोई विद्वान भेजने के लिए वृन्दावन सूचना भिजवा दी। वृन्दावन से गौड़ीय-वैष्णवों के पक्ष में श्रीबलदेव विद्याभूषण और उनके साथ श्रीपादविश्वनाथ चक्रवर्ती के एक शिष्य श्रीकृष्णदेव सार्वभौम भी गये। प्रतिपक्ष के साथ विचार विमर्श श्रीबलदेव विद्याभूषण ने ही किया। श्रीबलदेव विद्याभूषण ने पहले मौलिक रूप से ही शास्त्रप्रमाण एवं युक्तियाँ दीं। विरोधी पक्ष इससे ही निरुत्तर हो गया किन्तु जो युक्तियाँ एवं प्रमाण इन्होंने दिये, उनके समर्थन में गौड़ीय-वैष्णवाचार्यों द्वारा किये गये ब्रह्मसूत्र के भाष्य को उन्होंने देखना चाहा। परन्तु तब तक गौड़ीय-वैष्णवों द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र का कोई भाष्य न था। क्योंकि श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत को ही सूत्रकार श्रीव्यासजी द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र का अकृतिम भाष्य स्वीकार किया था। षड्गोस्वामियों द्वारा भी वही स्वीकृत हुआ। अतएव गोस्वामीपादों ने ब्रह्मसूत्र के पृथक् भाष्य की कोई आवश्यकता नहीं समझी। किन्तु प्रतिपक्ष रामानुज-सम्प्रदाय के पण्डितगण इस बात पर सन्तुष्ट न हुए। रामानुज-सम्प्रदाय का जिस प्रकार का ब्रह्मसूत्र का पृथक् भाष्य है वैसा ही वे देखना चाहते थे। तब श्रीबलदेव विद्याभूषण सम्प्रदाय का भाष्य दिखाने पर राजी हो गये और इसके लिए कुछ समय चाहा। तब श्रीगोविन्दजी की कृपा से उन्होंने भाष्य लिखा। यही भाष्य ''गोविन्दभाष्य'' कहलाया। विचारणीय है कि उस समय माध्व-सम्प्रदाय के दो-दो भाष्य विद्यमान थे, यदि गौड़ीय-सम्प्रदाय

माध्व के अन्तर्गत होती तो वे भाष्य प्रस्तुत किये जा सकते थे। गोविन्दभाष्य को देखकर प्रतिपक्ष रामानुज सम्प्रदायी महन्तों ने गौड़ीय–वैष्णवों को सम्प्रदायी वैष्णव स्वीकार किया और तब जाकर विवाद समाप्त हुआ। गौड़ीय–वैष्णवों का श्रीगोविन्ददेव जी की सेवा में अधिकार बना रहा। सब प्रतिपक्षियों ने गौड़ीय–सम्प्रदाय को एक पृथक् सम्प्रदाय के रूप में मान्यता प्रदान की। प्रतिपक्ष रामानुज–सम्प्रदाय के महन्तगणों का कहना था कि उपास्य एवं साध्य–साधन विषय में जिसका मत श्रुतिस्मृति सम्मत है और ब्रह्मसूत्र सम्मत भी है, केवल उसे ही सम्प्रदायी–स्वीकार किया जा सकता है। जयपुर में जब यह विचार विमर्श चल रहा था तो वहाँ श्री, ब्रह्म, रुद्र, एवं सनक इन चारों वैष्णव–सम्प्रदायों के ही पृथक्–पृथक् भाष्य भी अवश्य मौजूद थे। प्रतिपक्ष भी इससे अवगत था। मौखिक रूप से श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, वे यदि इन चारों वैष्णव सम्प्रदायों के किसी भी भाष्य के अनुरूप होते अर्थात् उनसे मेल खाते तो वे अलग से किसी भाष्य दिखाने का हठ न करते। इससे ही यह स्पष्ट होता है कि जिन सिद्धान्तों को श्रीबलदेव ने मौखिक रूप से कहा वे उन चारों सम्प्रदायों के भाष्यों के अनुरूप न थे, तभी तो उन्होंने गौड़ीय–सम्प्रदाय का भाष्य दिखाने को कहा। श्रीबलदेव विद्याभूषण ने जिस गोविन्दभाष्य को प्रस्तुत किया वह था उनके द्वारा कहे गये मौखिक विचारों के अनुरूप उनके द्वारा रचित दार्शनिक सिद्धान्तों का समर्थक। यदि वह उनके द्वारा मौखिक प्रतिपादित किये गये सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं होता तो प्रतिपक्ष इस पर स्वयं आपत्ति करता। इससे ही यह सिद्ध होता है कि गोविन्दभाष्य में निरूपण किये गये उपास्य एवं साध्य–साधनादि विषय के सिद्धान्त उल्लिखित चारों सम्प्रदायों के ब्रह्मसूत्र के भाष्यों के सिद्धान्तों से भिन्न थे। प्रतिपक्ष ने भी इस गोविन्दभाष्य को स्वीकार किया और गौड़ीय–वैष्णवों को सम्प्रदायी स्वीकार कर श्रीगोविन्दजी की सेवा में उनके अधिकार को मान्यता दी। ब्रह्मसूत्र के भाष्य द्वारा ही जब सम्प्रदाय का निर्णय होता है एवं चारों सम्प्रदायों के भाष्यों से पृथक् गोविन्दभाष्य को स्वीकार कर प्रतिपक्ष ने भी जब इसे सम्प्रदायी कहकर स्वीकार किया है, तब तो स्पष्ट रूप से ही विदित होता है कि गौड़ीय–वैष्णव सम्प्रदाय माध्व सम्प्रदायान्तर्गत नहीं हैं और उपास्य एवं साध्य–साधनादि विषय में इसके सिद्धान्त चारों सम्प्रदायों के ब्रह्मसूत्र भाष्य–सिद्धान्तों से भिन्न है।

श्रीबलदेव विद्याभूषण एवं माध्वमत–

गोविन्दभाष्य के अतिरिक्त श्रीबलदेव विद्याभूषण ने दार्शनिक सिद्धान्त सम्बन्धी अन्य भी कई एक ग्रन्थों की रचना की, जैसे प्रमेय रत्नावली, सिद्धान्तरत्न एवं वेदान्त–स्यमन्तक। कोई–कोई कहते हैं कि वेदान्त–स्यमन्तक इनकी रचना नहीं हैं इनके गुरुदेव श्रीराधादामोदरदास के द्वारा रचित है।

प्रमेयरत्नावली एवं सिद्धान्तरत्न इन दोनों रचनाओं के बारे में कोई मतभेद नहीं है। सिद्धान्तरत्न को गोविन्दभाष्य का 'पीठक' भी कहा जाता है। गोविन्दभाष्य में जिन समस्त सिद्धान्तों को कहा गया है, प्रमेयरत्नावली एवं सिद्धान्तरत्न में भी उन्हीं का सारमर्म तथा स्थलविशेष में उन्हीं की ही विवृति की गई है। अतः इन्हीं दोनों ग्रन्थों द्वारा ही गोविन्दभाष्य के मर्म को सुस्पष्ट रूप में समझा जा सकता है। माध्व–सिद्धान्तों से इनमें कहाँ और क्या भिन्नता है, वह भी इन दोनों ग्रन्थों द्वारा प्रकटित होती है, प्रदर्शित होती है।

परतत्त्व–

परमार्थ की प्राप्ति के लिए ही जीव परतत्त्व की उपासना करता है। श्रीमन्मध्वाचार्य के मत में परब्रह्म परतत्त्व या स्वयं भगवान् हैं–विष्णु और माध्व के विष्णु हैं–वैकुण्ठेश्वर चतुर्भुज श्रीनारायण। श्रीकृष्ण की स्वयंभगवत्ता को वे स्वीकार नहीं करते हैं। किन्तु श्रीबलदेव विद्याभूषण ने गोविन्दभाष्य में ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म स्वयं भगवान् कहकर निरूपण किया है। *"अथ जगज्जन्मादिहेतुः पुरुषोत्तमोऽविचिन्त्यत्वाद्वेदान्तेनैव बोध्यो न तु तर्कैरिति–वक्तुमारम्भः "सच्चिदानन्दरूपायकृष्णायाक्लिष्टकारिणे। नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे" इति गोपालतापन्याम् (१–१–२–सूत्रभाष्य); "योऽसौ सर्वैर्वेदैर्गीयत इति गोपालोपनिषद (१–१–४– सूत्र का भाष्योपक्रम); रासादिषु कर्मषु समूलरूपात् पूर्णादुच्यते प्रादुर्भवति।।१–१–६–सूत्रभाष्य।।"*

सिद्धान्तरत्न में भी उन्होंने लिखा है–"यदात्मको भगवास्तदात्मिका शक्तिः। किमात्मको भगवान् ? ज्ञानात्मक ऐश्वर्यात्मकः शक्यात्मकश्चेति। बुद्धिमनोऽङ्गप्रत्यंगवतो भगवतो लक्ष्यामहे 'बुद्धिमान् मनोवानंगप्रत्यंगवानिति' इति *'तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्द–विग्रहम्'* इति।।१–१२।।" *तस्मात् सर्वदाऽभिव्यक्त सर्वशक्तित्वात् कृष्णस्यैव स्वयंरूपत्वं सिद्धम्।।–"तत्र श्रीविष्णोः परमतत्त्वं यथा श्रीगोपालोपनिषदि" 'तस्मात् कृष्ण एव परोदेवस्तं ध्यायेत् तं रसेत् तं भजेत् तं यजेत् इति; 'नचान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्। पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः। तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्त्यलिंगमधोक्षजम्। गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतंयथा।"* सिद्धान्तरत्न के (२–१६/२१) अनुच्छेद में श्रीबलदेव विद्याभूषण ने श्रुतिस्मृति के प्रमाण उद्धृत कर दिग्दर्शन कराया है कि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही सर्वावतारी हैं, उनमें ही समस्त शक्तियों का पूर्णतम विकास है। अतएव वे ही स्वयं भगवान् हैं। परव्योमाधिपति नारायण हैं श्रीकृष्ण के अंश, आविर्भाव–विशेष। श्रीनारायण में श्रीकृष्ण की अपेक्षा न्यूनशक्तियों का विकास है, श्रीनारायण सर्वावतारी नहीं हैं। उपर्युक्त उल्लिखित सिद्धान्त श्रीमध्वाचार्य के सिद्धान्तों के विपरीत हैं।

श्रीराधिकादि गोपीवृन्द का स्वरूप–

श्रीमन्मध्वाचार्य श्रीराधिकादि गोपीवृन्द को विष्णुशक्ति स्वीकार नहीं करते हैं। उन्होंने उन्हें 'अप्सरास्त्री' कहकर उनकी भक्ति को सर्वापेक्षा निकृष्ट कहा है। वे भागवततात्पर्य में लिखते हैं–कृष्णकामा गोपीगण देहत्याग कर स्वर्ग को गयीं। कालक्रम से श्रीकृष्ण को परब्रह्म जानकार वे परमधाम को गईं[1]।

इससे स्पष्ट जाना जाता है कि श्रीमध्वाचार्य ने ब्रजगोपियों को जीवतत्त्व ही माना है और फिर अपनी इन उक्तियों के समर्थन में कोई शास्त्र प्रमाण भी उद्धृत नहीं किया है।

किन्तु श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण ने अपने सिद्धान्तरत्न के (२–२२–२५ वें) अनुच्छेद में श्रुतिस्मृति के प्रमाण उद्धृत कर यह सिद्ध किया है कि श्रीराधिका–चन्द्रावली आदि गोपीगण श्रीकृष्ण की नित्यपरिकर स्वरूपा हैं, नित्यकान्ता हैं। श्रीराधा हैं स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की स्वरूपशक्ति अथवा पराशक्ति। लक्ष्मी, दुर्गा आदि शक्तियाँ श्रीराधा की अंश स्वरूपा हैं और श्रीराधा उनकी अंशिनी हैं। वह मन एवं वाणी के अगोचर हैं, ह्लादिनी रूपा हैं, भगवदभिन्ना हैं, ह्लादिनी–संवित्–सारांश–प्रेमात्मिका हैं। महालक्ष्मी कहने से श्रीराधा का पूर्णत्व सिद्ध होता है, श्रीराधिकादि गोपीगण पूर्णशक्ति हैं। प्रमेयरत्नावली में भी उन्होंने इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। (१–२४ अनुच्छेद द्रष्टव्य)।

ब्रह्मसूत्र के गोविन्दभाष्य में भी श्रीबलदेव विद्याभूषण ने यही कहा है। *''उपस्थितेऽतस्तदवचनात्* ।।३–३–४२।। सूत्रभाष्य में उन्होंने लिखा है–*''ह्लादिनीसार–समवेत–सम्विदात्मक–युवतीरत्नत्वेन तु राधादि श्रीरूपा''* परब्रह्म श्रीकृष्ण की पराशक्ति ह्लादिनीसार–समवेत–संविदात्मक युवतीरत्न रूप में स्फुरित होकर श्रीराधादि श्रीरूपा हैं। श्रीराधिकादि गोपीगण जो श्रीकृष्ण की ह्लादिनी–सम्वित्–साररूपा हैं। वे जीवशक्तिरूप जीवतत्त्व नहीं हैं। इस समस्त आलोचना से यही स्पष्ट है कि श्रीराधिकादि गोपीगण के स्वरूपसम्बन्ध में श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण का जो अभिमत है वह माध्वमत से पूर्णतया विपरीत है।

व्रजपरिकर के वचन–

श्रीमध्वाचार्य ने श्रीकृष्ण के व्रजपरिकर की भक्ति को ब्रह्मा की भक्ति की अपेक्षा अत्यन्त न्यून कहा है (भागवत तात्पर्य ११–१२–२२) किन्तु श्रीबलदेव विद्याभूषण ने कहा है–श्रीकृष्ण के परिकर के प्रेम से अधिक अथवा समान प्रेम

१– कृष्णकामास्तदा गोप्यस्त्यक्त्वा देहं दिवं गताः। सम्यक् कृष्णं परं ब्रह्म ज्ञात्वा कालात् परं ययुः।।–भागवत तात्पर्य।।१०–२७–१३।।

और किसी में भी नहीं है। श्रीकृष्ण की उनके साथ कितनी अधिक गाढ़ प्रेमवश्यता है उसे स्वयं ब्रह्मा ने ही कहा है। *"श्रीकृष्णपरिकराणामसमाकिं–भ्यधिकप्रेमत्वं तदर्थज्वलद्विषह्रदप्रवेशधावनादितः प्रतीयते यस्माद् भगवतोऽपि गाढ़वश्यतेति निवेदितं ब्रह्मणा–'एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति नश्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन् मुह्यति। सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता। यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते* (श्रीभा० १०–१४–३५) इति।। सिद्धान्तरत्न।।२–२६।।"

सिद्धान्तरत्न के २–४७ वें अनुच्छेद में श्रीकृष्णलीला के नित्यत्व–कथन–प्रसंग में श्रीपाद ने श्रीकृष्ण के परिकर का नित्यत्व स्थापन किया है एवं *"व्याप्तेश्च समञ्जसम्"* ३–३–१०४ ब्रह्मसूत्र एवं *सर्वाभेदादन्यत्रेमे"* ।।३–३–११।। ब्रह्मसूत्र भाष्य में भी उन्होंने यही प्रतिपादित किया है। उनका यह सिद्धान्त भी श्रीमध्वाचार्य की उक्ति का विरोधी है। कारण कि श्रीकृष्ण–परिकर की भक्ति को ब्रह्मा की भक्ति से भी न्यून बताने से श्री मध्वाचार्य ने उन्हें अमुक्त जीवों की कोटि में डाल दिया है। वस्तुतः ब्रह्मा ही अमुक्त जीव है। महाप्रलय में ब्रह्मा की मुक्ति होती है। यदि कृष्ण–परिकरों को अमुक्त माना जाय तो उनका परिकरत्व ही सिद्ध नहीं होता, नित्यत्व की बात तो दूर रही। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है–श्रीमध्वाचार्य कहते हैं कि "गोपीगणों ने पहले स्वर्ग को प्राप्त किया, बाद में मोक्ष प्राप्त किया"–इससे स्पष्ट है कि उनके मत में गोपीगण जीवतत्त्व हैं, श्रीकृष्ण–परिकर नहीं।

इस प्रकार यही देखने में आता है कि श्रीकृष्ण के परिकर सम्बन्ध में भी श्रीबलदेव विद्याभूषण का सिद्धान्त श्रीमध्वाचार्य के विपरीत है। श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध के १४वें अध्याय में ब्रह्माजी ने स्वयं अपने मुख से व्रजपरिकरगणों के प्रेम के उत्कर्ष का गान किया है। किन्तु श्रीमध्वाचार्य इस अध्याय को ही स्वीकार नहीं करते, क्योंकि वे इसमें ब्रह्मा का अपकर्ष देखते हैं।

जीवतत्त्व–

माध्वमत में जीव को ईश्वर का निरुपाधिक प्रतिबिम्बांश माना गया है। किन्तु श्रीपाद विद्याभूषण के मत में जीव ब्रह्म की शक्ति है। *"अंशो नानाव्यपदेशात्"*–इत्यादि २–१–४१ ब्रह्मसूत्रभाष्य में उन्होंने लिखा है–जीव जो ब्रह्म का अंश है, वह टांकी द्वारा तोड़े गये पत्थर के टुकड़े की भाँति अंश नहीं है। *"तत्त्वञ्च तस्य तच्छक्तित्वात् सिद्धम्।*–ब्रह्म की शक्ति होने से ही जीव का ब्रह्मांशत्व सिद्ध होता है।" वस्तु की एकदेशता ही उसका अंश है। *"एकवस्त्वेकदेशत्वमंशत्वम्।"*–ब्रह्म है शक्तिमदेकवस्तु; ब्रह्म की शक्ति जीव ब्रह्म का एकदेशीय होने से ब्रह्म का अंश है। *"ब्रह्म खलु शक्तिमेदकं वस्तु; ब्रह्मशक्तिर्जीवो ब्रह्मैकदेशत्त्वात् ब्रह्मांशो भवतीति।।"* सिद्धान्तरत्न ८–१४

अनुच्छेद।। "स्मरन्ति च" ।।२–३–४५।। ब्रह्मसूत्र भाष्य में उन्होंने जीव को ब्रह्म का विभिन्नांश भी कहा है।

इससे भी ज्ञात होता है–जीवतत्त्व के सम्बन्ध में भी श्रीविद्याभूषण का सिद्धान्त माध्वमत से भिन्न है। श्रीमध्वाचार्य जीव को ब्रह्म की शक्ति स्वीकार नहीं करते।

उपास्य तत्त्व–

जिस भगवत्–स्वरूप को जो उपासक परब्रह्म परतत्त्व करके मानता है, वही भगवत्–स्वरूप उसका उपास्य हुआ करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार माध्वमत के उपास्य हैं वैकुण्ठाधिपति चतुर्भुज श्रीनारायण। किन्तु श्रीबलदेव के उपास्य हैं द्विभुज व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण। इस विषय में भी माध्वमत से भिन्नता है।

पुरुषार्थ अथवा साध्य–

माध्वमत में मोक्ष अर्थात् पञ्चविधा मुक्ति को ही परम पुरुषार्थ माना गया है किन्तु श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण के मतानुसार व्रज में व्रजेन्द्रनन्दन की प्रेमसेवा ही परम पुरुषार्थ है। प्रमेयरत्नावली में सप्तम प्रमेय में उन्होंने श्रीकृष्ण–प्राप्ति को ही मोक्ष कहा है। *"अथ श्रीकृष्ण प्राप्तेर्मोक्षत्वम्।"* उनके द्वारा कथित साधनप्रणाली से यह और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है।

साधन–

माध्वमत में सत्य, हित, प्रियकथन, शास्त्रानुशीलन, दया, स्पृहा, श्रद्धा, दान, परित्राण एवं परिरक्षण–इन दस प्रकार के भजनों में एक–एक का सम्पादन कर श्रीनारायण को समर्पण ही परम पुरुषार्थ प्राप्ति का साधन है। श्रीमन्महाप्रभु से भी तत्त्ववादी आचार्यगण ने यही कहा है– *"वर्णाश्रमधर्म कृष्णे समर्पण। एइ हय कृष्णभक्तेर श्रेष्ठ साधन।।* श्रीचै० २–९–२३६।। "श्रीमन्मध्वाचार्य ने अपने भागवततात्पर्य में कहा है– *"न तु ज्ञानमृते मोक्षो नान्यः पन्थेति हि श्रुतिः।*।१०–२७–१३।। *मोक्षमायान्ति नान्येन भक्तिं योग्यां विना क्वचित्* ।।१०–२७–१५।।" अर्थात् माध्वमतानुसार योग्याभक्ति ही परमपुरुषार्थ मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र साधन है और वह योग्याभक्ति प्राप्त होती है उपर्युक्त दस प्रकार के भजन के अनुष्ठान से।

किन्तु श्रीबलदेव विद्याभूषण के मतानुसार श्रीमद्भागवतोक्त श्रवण–कीर्तनादि नवविधा भक्ति ही परमपुरुषार्थ को प्राप्त करने का साधन है। (प्रमेयरत्नावली ८–२)। गोपालतापनी श्रुति एवं नारदपञ्चरात्र के वचनों को उद्धृत कर उन्होंने साधनभक्ति के स्वरूप को व्यक्त किया है। साधनभक्ति के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए कहते हैं; श्रीकृष्ण–प्रीति के अनुकूल भाव में श्रवण–कीर्तनादि

का अनुष्ठान ही भजन या भक्ति है। वह इस प्रकार श्रीकृष्ण में मन को अर्पित कर इहलोक अथवा परलोक की समस्त उपाधियों अर्थात् भुक्ति मुक्ति की वासनाओं को सम्यक् रूप से परित्याग कर, श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य सभी अभिलाषाओं को छोड़कर केवलमात्र श्रीकृष्ण–प्राप्ति की स्पृहा को चित्त में पोषण करते हुए भजन अर्थात् श्रवण–कीर्त्तनादि का अनुष्ठान करना ही उत्तमा साधनभक्ति है। कृष्णप्राप्ति के इस साधनभक्ति के फलस्वरूप आनुषंगिक रूप से ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

श्रीबलदेवोक्त इन श्रुतिस्मृति प्रमाणों से स्पष्ट है कि उनके मत में श्रीकृष्ण–प्राप्ति के साधन में श्रीकृष्ण–प्राप्ति अथवा कृष्णप्रीति को छोड़कर अन्य किसी वासना का स्थान नहीं है, मोक्षवासना का भी नहीं। कृष्णप्राप्ति होने पर मोक्ष तो आनुषंगिक रूप में स्वतः ही हो जाएगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साध्य के सम्बन्ध में श्रीमाध्व एवं श्रीबलदेव विद्याभूषण के मत में भिन्नता होने के कारण साधन के बारे में भी पार्थक्य है; अर्थात् साध्य और साधन दोनों विषयों में ही भिन्नता है।

ब्रह्म के साथ जीव–जगत् का सम्बन्ध–

ब्रह्म के साथ जीव–जगत् के सम्बन्ध के बारे में भाष्यकार का क्या मत है, यही भाष्यकार की विशेषता का प्रधान कारण हुआ करता है। जिसका जो मत होता है उसीके अनुसार ही वह मान्यता युक्त हुआ करता है। वास्तव में ब्रह्म के साथ जीव–जगदादि के विषय में मतभेद ही सम्प्रदायों के पार्थक्य का मुख्य कारण है। श्रीमन्मध्वाचार्य भेदवादी अर्थात् द्वैतवादी हैं। वे ब्रह्म से जीव–जगत् का तात्त्विक भेद स्वीकार करते हैं। उनके मत में ब्रह्म अद्वयतत्त्व नहीं है। किन्तु श्रीबलदेव विद्याभूषण हैं अद्वयवादी। उनके मत में ब्रह्म स्वगत–सजातीय– विजातीय भेद रहित तत्त्व है।

इस प्रकार श्रीबलदेव विद्याभूषण ने स्वगत–सजातीय–विजातीय भेदों से रहित कह कर ब्रह्म के अद्वयत्व को स्थापित किया है। किन्तु श्रीमन् मध्वाचार्य केवल स्वगत भेद–राहित्य को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं– *"आनन्दमात्र करपादमुखोदरादिः सर्वत्र च स्वगतभेद विवर्जितात्मा।।"* महाभारत–तात्पर्य।।१–११।। वे ईश्वर अर्थात् ब्रह्म के सजातीय–विजातीय भेदों की शून्यता को स्वीकार नहीं करते। कारण कि यदि वे स्वीकार कर लें तो उनका भेदवाद ही समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्म के साथ जीव–जगत् के सम्बन्ध के बारे में भी श्रीबलदेव विद्याभूषण का अभिमत श्रीमध्वाचार्य के मत से भिन्न है। जीव–जगत् को जो ब्रह्म से अभिन्न कहा गया है, उसका कारण है जीव–जगत् की ब्रह्मायत वृत्ति, ब्रह्माधीनता तथा ब्रह्म की व्यापकता आदि। ब्रह्म की शक्ति

होने के कारण जीव–जगत् भी ब्रह्मायत वृत्तिक, ब्रह्माधीन एवं ब्रह्मव्याप्य है। श्रीविद्याभूषण के मत में ब्रह्म एवं उसकी शक्ति तत्त्वतः अभिन्न है। अतः ब्रह्मायतवृत्तिकादि वश जीव–जगत् की ब्रह्म से अभिन्नता तात्त्विक दृष्टि से है अर्थात् ब्रह्म से जीव–जगत् का तात्त्विक रूप से भेद नहीं हैं। किन्तु इस प्रकार तात्त्विक भेद न होते हुए भी जीव–जगत् का पृथक् अस्तित्व है और यह भेद वास्तविक (पारमार्थिक) है, यही अभिप्राय है। ऐसा यदि स्वीकार न किया जाए तो ब्रह्म के अद्वयत्व में विरोध होता है।

और एक प्रश्न उठता है। सिद्धान्तरत्न के ८/३० वें अनुच्छेद की टीका में वे लिखते हैं– *"उभये ह्येते केवलाद्वैते सदोषत्वात् केवले द्वैते च निर्दोषेऽपि तद्वादिशिष्यतापत्तिलाञ्छनभयादरुचयः स्वातन्त्र्येच्छवः कौणिकाः सन्निहिताश्च तत्त्ववादिभिः स्वानीया (?) इत्युपेक्ष्या एव कुधियः।।"* यहाँ श्रीबलदेव ने तत्त्ववादियों के केवला द्वैतवाद को निर्दोष कहा है। ऐसा कहने से उनका माध्व आनुगत्य प्रतीत सा होता है, कारण कि तत्त्ववाद के गुरु श्रीमन्मध्वाचार्य केवला द्वैतवाद को स्वीकारते हैं।

इसका समाधान करते हैं। टीका के *"उभये ह्येते केवलाद्वैते सदोषत्वात्"*–इस वाक्य में दो प्रकार के अद्वैतवाद कहे गये हैं। सिद्धान्तरत्न के ८/२६ वें अनुच्छेद के टीका से ज्ञात होता है कि इन दो प्रकार के अद्वैतवादों में एक तो श्रीपाद शंकर का अद्वैतवाद है और दूसरा विष्णुस्वामी के अनुयायी बल्लभ–सम्प्रदाय का। शांकर मत में जीव और जगत् का वास्तविक अस्तित्व ही स्वीकृत नहीं है और दूसरे मत में समस्त प्रपञ्च को चिद्रूप माना गया है। दोनों में ही दोष को श्रीविद्याभूषण ने दिखाया है।

इस प्रकार श्रीपाद बलदेव ने गोविन्दभाष्य में प्रधान–प्रधान विषय सम्बन्धी जो–जो सिद्धान्त स्थापित किये हैं, उनका यहाँ दिग्दर्शन कराया गया है। इससे स्पष्ट है कि श्रीबलदेव विद्याभूषण ने अपने गोविन्दभाष्य में माध्व–सिद्धान्त को प्रकाशित नहीं किया है और न ही उल्लिखित चारों सम्प्रदाय के किन्हीं सिद्धान्तों को प्रदर्शित किया है बल्कि उनके सिद्धान्त पूर्वोल्लिखित चारों सम्प्रदायों से अलग ही स्थापित हुए हैं।

विरुद्ध–वाक्य–

श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण का जो अभिमत कहा गया है, कई एक वचन उनके अभिमत के विरुद्ध भी कहीं–कहीं प्राप्त होते हैं। उन विरुद्ध वचनों को भी कोई–कोई लोग उन्हीं के द्वारा ही कहे गये मानते हैं। इन विरुद्ध वचनों की भी आलोचना करना यहाँ अनुचित न होगा।

प्रमेयरत्नावली–

आजकल प्राप्त प्रमेयरत्नावली में जैसा देखा जाता है ग्रन्थ के प्रारम्भ

में श्लोकों में इष्ट वन्दना के रूप में गोविन्द–गोपीनाथ एवं मदनमोहन आदि की वन्दना की गई है। तृतीय श्लोक में आनन्दतीर्थ नामक यति मध्वाचार्य की वन्दना दृष्टिगत होती है। इसके अनन्तर चौथा श्लोक है–*'भवति विचिन्त्या विदुषां निरवकरा गुरुपरम्परा नित्यम्। एकान्तित्वं सिध्यति ययोदयति येन हरितोषः।।* ''विद्वज्जनों को एकान्त में नित्य निर्दोष गुरुपरम्परा का ध्यान करना चाहिए।'' इस प्रकार नित्य गुरुपरम्परा का ध्यान करते–करते साधक श्रीभगवान् में एकनिष्ठता को प्राप्त करता है और इस प्रकार की एकनिष्ठता से ही प्रभु प्रसन्न होते हैं।

इस चौथे श्लोक के बाद ही लिखा गया है–यदुक्तं पद्मपुराणे–

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः।।
श्री–ब्रह्म–रुद्र–सनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः।
चत्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात्।।इति।।५।।
रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुःसनः।।६।।

इस श्लोक का यही अर्थ निकलता है कि कलि में केवल मात्र चार वैष्णव–सम्प्रदाय होंगी; श्रीसम्प्रदाय (रामानुज–सम्प्रदाय), ब्रह्मसम्प्रदाय (माध्व–सम्प्रदाय), रुद्रसम्प्रदाय (विष्णुस्वामि–सम्प्रदाय) तथा सनक–सम्प्रदाय (निम्बार्क–सम्प्रदाय)। फिर कहा गया है– ''*तत्र स्वगुरुपरम्परा यथा :*– उसमें स्वगुरुपरम्परा इस प्रकार है–श्रीकृष्ण, ब्रह्मा, देवर्षि (नारद), बादरायण (वेदव्यास) मध्वाचार्य, पद्मनाभ, नृहरि, माधव, अक्षोभ्य, जयतीर्थ, ज्ञानसिन्धु, दयानिधि, विद्यानिधि, राजेन्द्र, जयधर्म, पुरुषोत्तम, ब्रह्मण्य, व्यासतीर्थ, लक्ष्मीपति, माधवेन्द्र (माधवेन्द्रपुरी) माधवेन्द्र के शिष्य श्रीईश्वर (ईश्वरपुरी), अद्वैत, नित्यानन्द, ईश्वरपुरी के शिष्य श्रीचैतन्य, श्रीकृष्णप्रेमदान कर इन्होंने जगत् का निस्तार किया।

इस सम्बन्ध में कुछ आलोचना आवश्यक मालूम होती है–प्रथम तो चार–सम्प्रदाय की सीमाबद्धता का सूचक यह श्लोक पद्मपुराण में कहीं प्राप्त ही नहीं है और न ही श्रीमन्महाप्रभु और न उनके अनुयायी आचार्यपादों ने इसकी कोई जानकारी दी; यहाँ तक कि स्वयं श्रीबलदेव विद्याभूषण ने गोविन्दभाष्यादि–तथा प्रमेयरत्नावली में जिन समस्त दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वे समस्त चारों सम्प्रदायों के सिद्धान्तों से भिन्न हैं। यदि वे सिद्धान्त उन चार सम्प्रदायों में से किसी सम्प्रदाय के सिद्धान्त से मेल खाते तो जयपुर का विवाद ही खड़ा न होता। पद्मपुराण में आरोपित इन श्लोकों के द्वितीय श्लोक का मिथ्यात्व मालूम होता है। द्वितीय श्लोक में

कहा गया है, कलि में उत्कल में पुरुषोत्तम से श्रीब्रह्मादि चार सम्प्रदाय होंगी। "उत्कल" उड़ियादेश का ही नाम है और "पुरुषोत्तम" शब्द "पुरुषोत्तम क्षेत्र" अथवा "पुरी" का द्योतक है। "पुरुषोतम" से जगन्नाथ को भी समझा जा सकता है किन्तु पुरुषोत्तम–जगन्नाथदेव ने किसी सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन नहीं किया है। अतः "पुरुषोत्तम" शब्द से यहाँ 'पुरुषोत्तम क्षेत्र' अथवा "पुरी" ही अभिप्रेत है। इस श्लोक से ध्वनित होता है कि पुरुषोत्तम क्षेत्र अथवा पुरी से श्रीब्रह्मादि उक्त चारों सम्प्रदायों का उद्भव होगा, किन्तु यह नितान्त मिथ्या बात है।

श्रीसम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्रीपाद रामानुजाचार्य का जन्मस्थान दक्षिण भारत के माद्राज के पश्चिम में करीब १३ कोस दूर 'श्रीपेरेम्बुदूर' में है। ब्रह्मसम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्रीमध्वाचार्य का जन्मस्थान है पाजकाक्षेत्र। उडूपी से ८ मील पूर्व दक्षिण में पापनाशिनी नदी के तीर पर स्थित विमान्‌गिरि पर्वत प्रदेश। सनकसम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्रीनिम्बार्काचार्य का जन्मस्थान तैलंगदेश मुंगेरपत्तन अथवा मंगीपाटन माना जाता है। रुद्र–सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्रीपाद विष्णुस्वामी दक्षिण देश में ही आविर्भूत हुए। द्रविड़–देशान्तर्गत पाण्ड्यदेश के राजा पाण्ड्य विजय के पुरोहित श्रीदेवस्वामी के पुत्र थे श्रीविष्णुस्वामी।

उक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि श्री–ब्रह्म–रुद्रादि चारों सम्प्रदायों के किसी भी प्रवर्त्तक आचार्य ने उत्कल अन्तर्गत पुरुषोत्तमक्षेत्र में न तो जन्म ही लिया है और न ही वहाँ से किसी सम्प्रदाय के प्रचार की शुरुआत ही हुई। पद्मपुराण १८ पुराणों में से एक है और अपौरुषेय है। अपौरुषेय शास्त्र में किसी भी प्रकार का भ्रमात्मक वाक्य नहीं हुआ करता। इससे यही ज्ञात होता है कि ये दोनों श्लोक पद्मपुराण के नाम से यहाँ जोड़ दिये गये हैं।

गुरुपरम्परा के सम्बन्ध में–

श्रीबलदेव विद्याभूषण पहले माध्व–सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त थे। अतः वे माध्व–सम्प्रदाय की गुरुपरम्परा के सही रूप में जानकार होने चाहिए, यह स्वाभाविक है। फिर माध्व–सम्प्रदाय के मठों में भी जो गुरुपरम्परा प्रचलित है, उसे भी सही मानना स्वाभाविक है। किन्तु उडूपीमठ में सुरक्षित गुरुपरम्परा से प्रमेयरत्नावली की गुरुपरम्परा मेल नहीं खाती। जयतीर्थ तक दोनों मेल खाती हैं किन्तु इससे आगे प्रमेयरत्नावली में जयतीर्थ के शिष्य हैं ज्ञानसिन्धु, उनके शिष्य दयानिधि, उनके विद्यानिधि, विद्यानिधि के शिष्य राजेन्द्र। किन्तु उडूपी मठ की गुरुपरम्परा में जयतीर्थ के शिष्य हैं विद्याधिराज, विद्याधिराज के शिष्य कवीन्द्र, कवीन्द्र के रागीश, उनके शिष्य रामचन्द्र, रामचन्द्र के शिष्य विद्यानिधि। माध्वमत के अन्यान्य मठों में सुरक्षित किसी गुरुपरम्परा से भी प्रमेयरत्नावली में वर्णित गुरुपरम्परा मेल नहीं खाती।

प्रमेयरत्नावली में उल्लिखित गुरुपरम्परा में मध्वाचार्य से पूर्व श्रीकृष्ण ब्रह्मा, देवर्षि एवं बादरायण ये चार नाम और हैं परन्तु उडूपीमठ एवं अन्यमठों में रक्षित परम्परा में ये चारों नाम नहीं हैं। उनकी परम्परा का आरम्भ मध्वा-चार्य (आनन्दतीर्थ) से ही है।

प्रमेयरत्नावली में बादरायण श्रीव्यासदेव को श्रीमध्वाचार्य के गुरुरूप में उल्लेख किया गया है किन्तु माध्व-सम्प्रदाय के ग्रन्थों से जाना जाता है कि श्रीमध्वाचार्य ने दीक्षा ली थी, श्रीपाद अच्युतप्रेक्ष से। श्रीमध्वाचार्य के एक नाम "पूर्णप्रज्ञ" से सभी परिचित हैं। यह नाम उन्हें दीक्षा के समय में गुरु श्रीअच्युतप्रेक्ष जी ने ही दिया था। माध्व-सम्प्रदाय में दीक्षित श्रीबलदेव विद्याभूषण श्रीमध्वाचार्य के दीक्षागुरु के नाम में किसी प्रकार की भूल करेंगे यह भी विश्वास करने योग्य नहीं है। अतः यह गुरुप्रणाली भी कल्पित है।

प्रमेयरत्नावली में कहा गया है कि श्रीमन्नित्यानन्द श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी के शिष्य थे किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है। भक्तिरत्नाकर के अनुसार श्रीपाद लक्ष्मीपति श्रीनित्यानन्द के दीक्षागुरु थे किन्तु श्रीजीव गोस्वामी की वैष्णव-वन्दना के मत से श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी के शिष्य श्रीसंकर्षणपुरी श्रीनित्यानन्द के गुरु जाने जाते हैं।

देखने से पता लगता है कि प्रमेयरत्नावली में दी गई गुरुपरम्परा सही नहीं हैं। श्रीबलदेव ने इस प्रकार भ्रमपूर्ण गुरुपरम्परा दी हो, ऐसा विश्वास नहीं होता। आगे चलकर प्रमेयरत्नावली में श्रीचैतन्यदेव के गुरु एवं परमगुरु के नाम यथाक्रम दिये गये हैं; श्रीईश्वर एवं श्रीमाधवेन्द्र इससे सहज में ही श्रीईश्वरपुरी एवं श्रीमाधवेन्द्रपुरी समझे जाते हैं, किन्तु माध्व-सम्प्रदाय में संन्यासियों में 'पुरी' उपाधि नहीं है, केवल 'तीर्थ' उपाधि ही दी जाती है-यह बात श्रीबलदेव भी जानते ही होंगे। श्रीपाद ईश्वरपुरी एवं श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी को माध्व-सम्प्रदाय में कैसे अन्तर्भुक्त किया जा सकता है ?

श्रीबलदेव यह भी जानते थे कि माध्व-सम्प्रदाय में श्रीराधाकृष्ण उपासना प्रचलित नहीं थी, न अभी तक है। वे स्वयं ही इसका प्रमाण हैं। यदि माध्व-सम्प्रदाय में श्रीश्रीराधाकृष्ण-उपासना प्रचलित होती तो वे इसके लिए गौड़ीय सम्प्रदाय के श्रीराधादामोदर जी से दीक्षा फिर क्यों ग्रहण करते ? इस स्थिति में श्रीराधाकृष्ण-उपासक श्रीपाद माधवेन्द्र एवं श्रीपाद ईश्वरपुरी को वे माध्व के अन्तर्भुक्त कहेंगे-यह विश्वास नहीं किया जा सकता।

उल्लिखित कारणों के देखते हुए प्रमेयरत्नावली में लिखित गुरुपरम्परा श्रीबलदेव द्वारा लिखित नहीं है-ऐसा निश्चय होता है, किसी और के द्वारा कल्पित है।

एक बात और भी है; गुरुपरम्परा के पहले लिखा है- *'स्वगुरुपरम्परा'*।

स्वगुरुपरम्परा लिखने का तात्पर्य है प्रमेयरत्नावली के रचयिता श्रीबलदेव की गुरु परम्परा। किन्तु यह श्रीबलदेव की गुरुपरम्परा नहीं है, यह तो श्रीचैतन्यदेव की मालूम होती है। सब से अन्तिम नाम इसमें श्रीचैतन्य का है। इसमें न तो श्रीबलदेव का अपना नाम है न उनके गुरु का। श्रीराधादामोदर नाम भी इसमें नहीं है। श्रीबलदेव के माध्व–सम्प्रदाय के गुरु का भी नाम नहीं है और हो भी नहीं सकता। यह परम्परा है श्रीचैतन्य तक और श्रीचैतन्य का आविर्भाव हुआ है १५ वीं शताब्दी के चतुर्थपाद में और श्रीबलदेव हुए हैं १८वीं शताब्दी में। १८वीं शताब्दी के किसी व्यक्ति का दीक्षा गुरु १५वीं शताब्दी या इससे पूर्व समय का कैसे हो सकता है ? इससे स्पष्ट है कि यह जो गुरुपरम्परा प्रमेयरत्नावली में दी गई है, श्रीबलदेव विद्याभूषण की नहीं है। यदि श्रीबलदेव अपनी गुरुपरम्परा का वर्णन करते तो उसमें उनके गुरुपर्यन्त उनका नाम अवश्य होता।

श्रीपाद बलदेव ने गोविन्दभाष्य, सिद्धान्तरत्न, सिद्धान्तरत्न की टीका, गीताभूषण भाष्य, तत्त्वसन्दर्भ की टीका, श्रीमद्भागवत की टीका आदि अनेक ग्रन्थों के प्रारम्भ में इष्टवन्दना की है किन्तु इस प्रकार वैष्णवों की चार सम्प्रदायबद्धता का सूचक कोई भी वाक्य अथवा गुरुपरम्परा रूप में श्रीचैतन्य की गुरुपरम्परा का किसी में भी उल्लेख नहीं किया गया है, फिर प्रमेयरत्नावली के प्रारम्भ में ही ऐसा करने की उन्हें क्या जरूरत आ पड़ी ?–यह समझ में नहीं आता। प्रमेयरत्नावली के प्रारम्भ में उल्लिखित श्लोक श्रीबलदेव के गोविन्दभाष्य की सूक्ष्मा नाम्नी टीका के प्रारम्भ में भी देखे गये हैं, इस सम्बन्ध में बाद में आलोचना करेंगे।

इन कारणों से ऐसा किञ्चित् भी विश्वास नहीं होता कि चारसम्प्रदाय सम्बन्धी श्लोक एवं गुरु परंपरा श्रीपाद बलदेव के द्वारा लिखित हैं। *दुष्टाप्रसीदतु न्याये''* यदि किसी प्रकार प्रमेयरत्नावली में कही गई गुरुपरम्परा भ्रान्तिरहित है तब भी गौड़ीय–सम्प्रदाय को माध्व–सम्प्रदाय अन्तर्भुक्त नहीं माना जा सकता। ''सम्प्रदाय'' का अर्थ है– *''गुरुपरम्परागतः सदुपदेशः। शिष्टाचारपरम्परा–वतीर्णोपदेशः।।''* इति भरतः।। *''गुरु–परम्परागत– सदुपदिष्टव्यक्तिसमूहः।।''* शब्दकल्पद्रुम।। अर्थात् गुरुपरम्परा द्वारा प्राप्त या शिष्टाचार की परम्परा द्वारा प्राप्त सदुपदेश को ''सम्प्रदाय'' कहते हैं। गुरुपरम्परागत सदुपदेश प्राप्त व्यक्तियों के समूह को भी 'सम्प्रदाय' कहा जाता है। सम्प्रदायत्व की सिद्धि या प्राप्ति के लिए गुरुपरम्परा से जुड़ना आवश्यक है और गुरुपरम्परा में जुड़ने पर उस सम्प्रदाय के सदुपदेशों अर्थात् उपास्य, उपासना, साध्य–साधनादि सम्बन्धी सदुपदेशों की संगति होना भी आवश्यक है। गौड़ीय एवं माध्व के इन सदुपदेशों में कहीं भी तो साम्य नहीं है, बल्कि विरोध है।

अब यहाँ यह देखना है कि प्रमेयरत्नावली की गुरुपरम्परा को यदि

स्वीकार कर लिया जाए तो दोनों की गुरुपरम्परा में कहीं संगति बैठती है या नहीं ? इस गुरुपरम्परा में कहा गया है कि श्रीचैतन्य, श्रीनित्यानन्द एवं श्रीअद्वैत माध्वसम्प्रदाय के हैं। इनमें श्रीचैतन्य के माध्यम से तो दोनों सम्प्रदायों में कोई संगति बैठ नहीं सकती, क्योंकि श्रीचैतन्य ने तो किसी को भी मन्त्रदीक्षा दी नहीं। हाँ, श्रीनित्यानन्द परिवार एवं श्रीअद्वैत परिवार के साथ इस गुरुपरम्परा की संगति सम्भव हो सकती है। किन्तु गदाधर परिवार, ठाकुर महाशय के परिवार के साथ किसी प्रकार का संयोग नहीं पाया जाता। गदाधर परिवार आदि विभिन्न परिवारों के वैष्णवों को प्रमेयरत्नावली के अनुसार माध्व–सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त यदि नहीं माना जा सकता तो क्या इन्हें असम्प्रदायी कहा जाएगा ? यदि वे असम्प्रदायी हैं तो श्रीनित्यानन्द परिवारों एवं श्रीअद्वैत परिवारों के साथ उनके जो सामाजिकतादि सम्बन्ध पहले से ही चले आ रहे हैं वह कैसे सम्भव है ? श्रीमन्महाप्रभु के चरणाश्रित सभी परिवारों के वैष्णवगण एक ही वैष्णवगोष्ठी में एक ही सम्प्रदाय में नहीं हैं यह कौन मानेगा ? इसे स्वीकार करने पर उन समस्त को एक ही श्रौत वैष्णव–सम्प्रदाय अन्तर्गत मानना ही होगा और वह श्रौत सम्प्रदाय माध्व नहीं है, यह भी मानना होगा। क्योंकि श्रीनित्यानन्द परिवार एवं श्रीअद्वैत परिवार के अतिरिक्त अन्य किसी परिवार को किसी रूप में माध्वसम्प्रदाय अन्तर्भुक्त नहीं किया जा सकता और गुरुपरम्परा के सदुपदेशानुसार इन दोनों परिवारों को माध्व–अन्तर्भुक्त भी नहीं माना जा सकता। स्पष्ट है कि प्रमेयरत्नावली में वर्णित उक्त भ्रमात्मक गुरुपरम्परा को भ्रामक न मानने पर भी गौड़ीय–वैष्णव सम्प्रदाय को माध्वानुगत नहीं माना जा सकता।

तत्त्वसन्दर्भ टीका–

श्रीबलदेव विद्याभूषण के सम्बन्ध में जो कुछ अब तक कहा गया है उससे कई प्रश्न उठ सकते हैं। प्रथमतः तत्त्वसन्दर्भ की टीका में श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत एवं श्रीचैतन्य के चरणों की वन्दना के उपरान्त श्रीबलदेव ने श्रीआनन्दतीर्थ (मध्वाचार्य) का जयकीर्त्तन किया है। *"मायावादं यस्तमस्तो–ममुच्चैर्नाशं निन्ये वेदवागंशुजालैः। भक्तिर्विष्णोर्दर्शिता येन लोके जीयात् सोऽयं भानुरानन्दतीर्थः।।*–जिन्होंने वेदवाक्यरूप अंशुजाल (किरणों) के द्वारा मायावादरूप अन्धकार–राशि को सर्वतोभाव से ध्वंस किया है, जिन्होंने जगत् में विष्णु–भक्ति का प्रदर्शन किया है, उन आनन्दतीर्थ नामक सूर्य की जय हो।" इस वाक्य से ऐसा दीखता है कि उन्होंने मध्वाचार्य का आनुगत्य किया है।

इसका उत्तर यह है कि श्रीविद्याभूषण ने यहाँ भक्तिविरोधी मायावाद के ध्वंसकारी के रूप में श्रीमन्मध्वाचार्य का जयगान किया है, अपनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक रूप में अथवा आचार्यरूप में इसे नहीं समझा जा सकता। यदि यह कहा जाय कि श्रीरामानुजादि महानुभावों ने भी तो मायावाद का खण्डन

किया है फिर उन्होंने उनका जयनाद न कर केवल मध्वाचार्य का ही जयगान क्यों किया ? उत्तर–श्रीमन्मध्वाचार्य ने जितनी तीव्रता से मायावाद पर आक्रमण किया और उसका खण्डन किया उतनी तीव्रता से किसी ने नहीं किया। दीर्घकाल तक उन्होंने शांकरवादी लोगों के साथ शास्त्र–विचार तर्कादि कर उन्हें पराजित किया। मायावाद के खण्डन एवं विरोध करने में श्रीमध्वाचार्य सबसे अग्रणी थे। इसीलिए मायावाद–विरोधी श्रीबलदेव ने विरोधरूप में मध्वाचार्य का ही गुणगान करना ज्यादा उचित समझा। इस बात से उनकी मध्वानुगत होने की बात नहीं समझी जा सकती। इसी प्रकार की उक्ति श्रीजीव गोस्वामीपाद ने भी स्थल–विशेष पर कही है– *''यदेव किल दृष्टा श्रीमध्वाचार्यचरणैर्वैष्णवान्तराणां तच्छिष्यान्तरपुण्यारण्यादिरीतिकव्याख्या–प्रवेशशंकया तत्र तात्पर्यान्तरं लिखद्भिर्वर्त्मापदेशः कृत इति सात्वता वर्णयन्ति।।* तत्त्वसन्दर्भः।।२४।।–श्रीशंकराचार्य ने श्रीमद्भागवत में हस्तक्षेप न करके बल्कि एक प्रकार से उसका समादर ही किया है। किन्तु ऐसी प्रसिद्धि है कि श्रीशंकराचार्य के अन्यान्य शिष्य पुण्यारण्य प्रभृति द्वारा की गई व्याख्यान की रीति को देखकर, अन्यान्य वैष्णव कहीं श्रीमद्भागवत को निर्गुण चिन्मात्रपरक समझने लगें इसलिए श्रीमन्मध्वाचार्यादि वृद्ध वैष्णवों ने श्रीमद्भागवत के भगवत्परक तात्पर्य को स्पष्ट कर उनका पथप्रदर्शन किया–यह बात वैष्णव लोग कहते हैं। इस वाक्य से यदि कोई श्रीजीवगोस्वामी को माध्वान्तर्गत मान ले तो यह बात उनकी कौन मानेगा ?

ऐसा कहते हैं कि श्रीपादशंकराचार्य के साथ विवाद या विचार करते समय व्यासदेव ने मध्व के मत को स्वीकार किया, और शंकराचार्य के मत का त्याग किया। किन्तु इसकी सत्यता इतिहास बताता है।

श्रीपाद शंकर का अवस्थिति काल है ७८८ ई० से ८२० ई० तक और मध्वाचार्य का आविर्भाव है ११९७ ई० अर्थात् शंकराचार्य के तिरोभाव के करीब ३७७ वर्ष बाद। तब फिर दोनों समसामयिक कैसे हुए और श्रीशंकराचार्य के साथ श्रीमध्वाचार्य का विचार–विमर्श भी कैसे सम्भव है ? यह एक निराधार किम्वदन्ती है। श्रीबलदेव जैसा विज्ञव्यक्ति बिना विचारे ऐसी बात कैसे लिख सकता है ? माध्वमत की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए श्रीमध्वाचार्य के पक्ष में श्रीशंकराचार्य की समसामयिकता के दिखाने का भी कोई प्रयोजन नहीं हो सकता।

गोविन्दभाष्य की सूक्ष्मानाम्नी टीका–

श्रीबलदेव विद्याभूषण के गोविन्दभाष्य की सूक्ष्मा नाम की एक टीका है। यह टीका श्रीबलदेव द्वारा ही लिखित है ऐसा सब मानते आए हैं, किन्तु टीका के मंगलाचरणान्तर्गत इष्टवन्दना के बाद कुछ एक श्लोक श्रीबलदेव के अपने ही मत के विरोधी देखे जाते हैं। यह मत–विरोधी श्लोक जिसके द्वारा लिखे

गये हैं, टीका भी यदि उसीके द्वारा लिखित है तब तो इस टीका को श्रीबलदेव द्वारा लिखित मानना सम्भव नहीं है। टीका जिसके द्वारा लिखित है, ये श्लोक उसके द्वारा लिखित नहीं हैं ऐसा यदि माना जाय तो टीका को श्रीबलदेव के द्वारा लिखित स्वीकारने में भी कोई आपत्ति नहीं है।

टीका के प्रारम्भ में इष्टवन्दना के रूप में श्रीगोविन्द, श्रीश्यामसुन्दर, श्रीकृष्णचैतन्य, श्रीव्यासदेव, श्रीरूप–सनातन, श्रीजीव, फिर श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र एवं श्रीनित्यानन्दाद्वैतचन्द्र की वन्दना की गई है। उसके बाद गोविन्दभाष्य का भी जयगान किया गया है। उसके बाद, जैसाकि प्रमेयरत्नावली के मंगलाचरण में इष्टवन्दना के बाद जो श्लोक हैं वही श्लोक ज्यों के त्यों *''आनन्द तीर्थनामा सुखधामा यतिर्जीयात्'' से आरम्भ कर देवमीश्वरशिष्यं श्रीचैतन्यञ्चभजामहे। श्रीकृष्णप्रेमदानेन येन निस्तारितं जगत्'* पर्यन्त कई एक श्लोक दृष्टिगत होते हैं, ये सब श्लोक श्रीबलदेव द्वारा लिखित नहीं हैं–ये पहले भी कहा जा चुका है।

इन श्लोकों के बाद कहा गया है– *''भाष्यमेतद्विरचितं बलदेवेन धीमता। श्रीगोविन्दनिदेशेन गोविन्दाख्यामगात्ततः।।''* अर्थात् ''धीमान्'' बुद्धिमान् बलदेव के द्वारा यह गोविन्दभाष्य लिखा गया। यह बात भी श्रीबलदेव द्वारा लिखित प्रतीत नहीं होती, क्योंकि श्रीरूपादि किसी भी वैष्णव–ग्रन्थकार ने ''धीमान्'' कहकर अपने गौरव को प्रकाशित नहीं किया। श्रीबलदेव अपने को बुद्धिमान् नहीं लिख सकते।

इसके बाद–पाठ का अधिकारी कौन है ? स्नानादि के बाद कैसे भाष्य का पाठ करना चाहिए ? यह सब वर्णन किया गया है। बाद में कहा गया है कि जिनकी आलस्यवश विस्तृत भाष्य को पढ़ने में यदि प्रवृत्ति न हो तो उनके लिए इस संक्षिप्त टीका को लिखते हैं। तत्पश्चात् *''भाष्यं यस्य निदेशाद्रचितं विद्याभूषणेनेदम्। गोविन्दः स परमात्मा ममापि सूक्ष्मं करोत्यस्मिन्।*–अर्थात् जिनके निदेश से विद्याभूषण के द्वारा इस भाष्य की रचना हुई है, उन्हीं परमात्मा गोविन्द ने ही इस टीका–विषय को मुझसे सूक्ष्म कराया है अर्थात् मेरी यह सूक्ष्मा नाम्नी टीका भी उन्हीं की कृपा से रचित हुई है। इसी एक श्लोक से ही स्पष्ट है कि टीका श्रीविद्याभूषण के द्वारा रचित नहीं हैं। इसके बाद कृष्णपादाम्बुज में आसक्त साधुगणों के प्रसाद की याचना की गई है।

इसके बाद लिखा है– *''अथ श्रीकृष्णचैतन्यहरिस्वीकृतमध्वमुनिमतानुसारतः ब्रह्मसूत्राणि व्याचिख्यासु भाष्यकारः श्रीगोविन्दैकान्ती विद्याभूषणापरनामा बलदेवः निर्विघ्नायै तत्–पूर्त्तये शिष्टाचारपरिप्राप्तशास्त्रप्रतिपाद्येष्टदेवतानमस्काररूपं मंगलमाचरति।। सत्यमिति।।''* गोविन्दभाष्य के मंगलाचरण के *''सत्यं ज्ञानमनन्तं शिवादिस्तुतं भजद्रूपम्। गोविन्दं तमचिन्त्यं हेतुमदोषं नमस्यामः।।''*–इस सर्वप्रथम

श्लोक की व्याख्या के उपक्रम में उल्लिखित वाक्य में कहा गया है कि श्रीकृष्णचैतन्यहरि द्वारा स्वीकृत मध्वमुनि के मतानुसार ब्रह्मसूत्र–समूह की व्याख्या करने का निर्विघ्नता के निमित्त शिष्टाचारानुसार शास्त्रप्रतिपाद्य इष्टदेवता के लिए नमस्कारात्मक मंगलाचरण करता हूँ–"सत्यमित्यादि श्लोक में।"

यहाँ कहा गया है कि मध्वमतानुसार बलदेव ब्रह्मसूत्र की व्याख्या करते हैं और वह माध्वमत श्रीकृष्णचैतन्यहरि द्वारा स्वीकृत है। यह बात श्रीबलदेव द्वारा लिखित नहीं हो सकती, कारण कि पहले ही कहा जा चुका है कि गोविन्दभाष्य में माध्वमत प्रतिपादित नहीं किया गया है अपितु माध्वमत से भिन्न मत उसमें प्रतिपादित है; यहाँ तक कि माध्वमत का पूर्णरूप से विरुद्ध मत स्थापित किया गया है। जिस ग्रन्थ में उन्होंने माध्वमत से भिन्न एवं विरुद्ध मत प्रतिपादित किया है, उसी ग्रन्थ की टीका के उपक्रम में श्रीबलदेव उसे मध्वमतानुसार कैसे लिख सकते हैं? और फिर जिस ग्रन्थ में गौड़ीय मत को माध्वमत से भिन्न तथा अनेक स्थानों पर विरोधी रूप में दर्शाया गया हो, उसी ग्रन्थ के उपक्रम में गौड़ीयमत को माध्व–सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त कह दिया जाए, यह तो बालबुद्धि का परिचायक है। मूलप्रति को प्रत्यक्ष देखकर कोई भी विद्वान् व्यक्ति इसकी यथार्थता अथवा असत्यता का निर्णय कर सकता है। ऐसे विचक्षण–बुद्धि श्रीबलदेव को पूर्वापर विचार रहित लेखक कौन मान सकता है?

श्रीबलदेव न तो बालबुद्धि थे और न ही दुर्बल चित्त। शास्त्र प्रमाणों की आलोचना में उन्होंने जो भी अनुभव किया, उसे अत्यन्त दृढ़तापूर्वक एवं निर्भीकता से व्यक्त किया, इस विषय में उन्होंने किसी की परवाह नहीं की। अपनी पूर्वसम्प्रदायाचार्य श्रीमन्मध्व के विरुद्धमत को भी प्रकट करने में उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ।

अतः श्रीबलदेव के ग्रन्थों में उल्लिखित सिद्धान्तों का यथोचित अनुसन्धान न करके अनेक मनगढ़न्त श्लोकों को उनकी रचना बताकर उनके प्रति महा अपराध किया गया है।

माध्व–सम्प्रदाय के आनुगत्य अथवा अन्तर्भुक्तता की स्वीकृति का पर्यवसान होता है–कि व्रजपरिकर, विशेष कर व्रजगोपियों के सम्बन्ध में श्रीमन्मध्वाचार्य ने क्या कहा है?–इसमें व्रजगोपीगण समन्वित श्रीश्रीराधाकृष्णसेवा के लिए लुब्ध हो श्रीबलदेव स्वयं माध्व–सम्प्रदाय को छोड़ गौड़ीय–सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। इसके बाद उन्होंने व्रजगोपियों को अपने उपास्य रूप में एवं गौड़ीय–सम्प्रदाय को स्वसम्प्रदाय के रूप में स्वीकार किया। व्रजगोपियों के सम्बन्ध में श्रीमध्व द्वारा कहे गये अशास्त्रीय कपोलकल्पित, हृदयविदारक कुत्सित विचारों को गौड़ीय–वैष्णवों का स्वीकारना कैसे सम्भव हो सकता है? माध्व–अन्तर्भुक्त मानने से गौड़ीय–सम्प्रदाय की जो हेयता दृष्ट होती है,

वह कैसे स्वीकारी जा सकती है ?

प्रमेयरत्नावली का रचनाकाल–

प्रमेयरत्नावली के रचनाकाल का निर्णय करना आसान नहीं है। श्रीबलदेव ने गोविन्दभाष्य में जिन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, प्रमेयरत्नावली में भी वही सब कहे गये हैं, किन्तु अति संक्षेप में यानि सूत्ररूप में। यदि प्रमेयरत्नावली गोविन्दभाष्य के बाद लिखी गई होती तो भाष्य में उल्लिखित सिद्धान्तों की कुछ–कुछ विवृत्ति उसमें अवश्य मिलती। किन्तु ऐसा नहीं है। इससे जान पड़ता है कि प्रमेयरत्नावली गोविन्दभाष्य से पहले लिखी गई है। किन्तु गोविन्दभाष्य के आदि अथवा अन्त में कहीं भी श्रीमध्वाचार्य की वन्दना दृष्टिगत नहीं होती जबकि प्रमेयरत्नावली के प्रारम्भ में *"आनन्दतीर्थनामा सुखमयधामा"* इत्यादि जयसूचक श्लोक तथा नवम् प्रमेय के बाद भी *"एवमुक्तं प्राचा"* कहकर *"श्रीमध्वमते हरिः परम सत्यं"* इत्यादि एवं उसके बाद *"आनन्दतीर्थे रचितानि यस्यां प्रमेयरत्नानि नवैव सन्ति।।"* इत्यादि कहा गया है। इससे जान पड़ता है गौड़ीय–सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व ही श्रीबलदेव ने प्रमेयरत्नावली की रचना की थी। गोविन्दभाष्य की रचना तो गौड़ीय–सम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद ही हुई इसमें कोई सन्देह है ही नहीं।

सिद्धान्तरत्न की रचना गोविन्दभाष्य के बाद हुई है इसका प्रमाण तो स्वयं सिद्धान्तरत्न में ही मौजूद है। सिद्धान्तरत्न में अनेक जगह ब्रह्मसूत्र के गोविन्दभाष्य का उल्लेख है, किन्तु प्रमेयरत्नावली में ऐसा कहीं नहीं है। सिद्धान्तरत्न में उपसंहार करते हुए श्रीबलदेव विद्याभूषण ने गौड़ीय–सम्प्रदाय के दीक्षागुरु श्रीराधादामोदरपाद का जयघोष किया है किन्तु प्रमेयरत्नावली में यह सब भी प्राप्त नहीं है।

कवि कर्ण्पपूर की गौरगणोद्देशदीपिका में, श्रीबलदेव विद्याभूषण की प्रमेयरत्नावली में तथा गोविन्दभाष्य की सूक्ष्मा नामक टीका में तथा अन्य ग्रन्थों में वैष्णवों के चार सम्प्रदायों में सीमित करने वाले तथा गौड़ीय–सम्प्रदाय को माध्वसम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त दिखाने वाले जो समस्त श्लोक दीखने में आते हैं, वे वास्तविकता से परे ही जान पड़ते हैं। यह सब कुछ उक्त आलोचना में दिखाया गया है।

इन श्लोकों को किसने और कब रचना कर उनमें समाविष्ट किया, यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह अवश्य ज्ञात होता है कि श्रीबलदेव विद्याभूषण की प्रसिद्धि होने तथा गोविन्दभाष्य की रचना से पूर्व ही इनकी रचना की गई। जिसने भी जब इनकी रचना की हो, उसे अवश्य माध्व–सम्प्रदाय की गुरुपरम्परा, माध्व के दार्शनिक सिद्धान्तों, उपास्य–उपासना

तथा साध्य एवं गौड़ीय–सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों, उपास्य, उपासना और साध्य के बारे में तथा श्रीमहाप्रभु एवं उनके पार्षदों तथा गौड़ीय–वैष्णवाचार्यों के अभिमत का विशेष ज्ञान नहीं था, यह बात अच्छी प्रकार स्पष्ट होती है। जो लोग इन श्लोकों को श्रीबलदेव विद्याभूषण द्वारा रचित बताते हैं वे यदि श्रीबलदेव एवं मध्वाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों का तुलनात्मक विवेचन करके देखें तो वे भी गौड़ीय सम्प्रदाय को माध्वसम्प्रदाय से नितान्त पृथक् मानेंगे।

जो भी हो, अब भी अनेक लोगों में यह दृढ़ धारणा है कि चार सम्प्रदायों के अतिरिक्त अन्य कोई भी वैष्णव सम्प्रदाय नहीं है तथा गौड़ीय–सम्प्रदाय माध्व के अन्तर्भुक्त है। गौड़ीय–दर्शन तथा माध्व–दर्शन की तुलनात्मक आलोचना की बात तो दूर रही, इस सम्बन्ध में श्रीमन्महाप्रभु, उनके पार्षदों तथा गौड़ीय–सम्प्रदाय के आदि आचार्यों ने क्या कहा है इसका अनुसंधान किये बिना ही वे सम्प्रदाय की हेयता प्रतिपादन करने में तत्पर हैं। किन्तु उनकी ऐसी भ्रमपूर्ण धारणा से न तो श्रीमन्महाप्रभु के सिद्धान्तों की कुछ हानि होने वाली है न श्रीगौड़ीय–वैष्णव सम्प्रदाय का पृथक् अस्तित्व कभी मिटने वाला है। अनेक प्रशस्त गौड़ीयवैष्णव आचार्यगण इस मार्मिक रहस्य को जानकर अपने को श्रीचैतन्य सम्प्रदायाचार्य घोषित करने लगे हैं।

इतिहास तथा वास्तविकता को नष्ट करने के लिए दुराग्रही लोग अब भी इस प्रकार के कुकृत्य करते हैं। इतिहास सत्साहित्य को विकृत करना ही उनका काम है। वे इसमें अपनी सम्प्रदाय या आचार्यों की प्रतिष्ठा समझते हैं। किन्तु वे अपने आचार्यों को–सम्प्रदाय को कलंकित करते हैं, साथ ही स्वयं भी नरकगामी होते हैं।

• जय श्री राधे •

तत्कालीन अनेक संस्थाओं द्वारा प्रदत्त
विद्यावाचस्पति, भक्तिसिद्धान्तरत्न, भागवतभूषण,
भक्तिभूषण, डी.लिट् आदि अनेकानेक
उपाधियों से विभूषित परम विद्वान् साहित्यकार
अनेकानेक वैष्णव ग्रन्थों के प्रणेता एवं प्रकाशक

श्रीराधागोविन्दनाथ

द्वारा प्रस्तुत श्रीचैतन्य सम्प्रदाय पुस्तिका का

सारांश

•

व्रजविभूति श्रीश्यामदास
कृपानुभूति पूर्वक
दासाभास डॉ गिरिराज
द्वारा प्रस्तुत

•

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल • श्रीवृन्दावन

शब्द

- 'माध्वगौड़ेश्वर' शब्द एवं विचार प्रामाणिक एवं प्राचीन नहीं है।
- सन् 1908 में प्रकाशित प्राचीन हरिभक्तिविलास ग्रन्थ में 'गौड़ेश्वर' एवं 'चैतन्य सम्प्रदायाचार्य' शब्द है।
- राधाकुण्ड से प्रकाशित 'वैष्णव व्रतोत्सव' जो सर्वमान्य है और सन् 1940 से प्रकाशित हो रहा है। उसकी प्रकाशक संस्था का नाम 'गौड़ेश्वर वैष्णव सम्मिलनी है। 'माध्वगौड़ेश्वर वैष्णव सम्मिलनी' नहीं है।
- माध्वगौड़ेश्वर शब्द इधर 50-60 वर्षों में प्रचलित हुआ है।
- इसका प्रचलन हुआ है-'अतः कलौ भविष्यंति' वाले प्रक्षिप्त श्लोक से।
- अपनी सम्प्रदाय को श्रेष्ठ और मौलिक बताने वाले किन्हीं महोदय ने इसकी रचना करके 'पद्मपुराण' में घुसाया है। लेकिन पद्मपुराण की प्राचीन प्रतियों में यह नहीं है।
- गौड़ीय या चैतन्य, राधावल्लभ, रामानन्द, सखी आदि सम्प्रदायों के बढ़ते प्रचार-प्रसार से द्वेष के कारण सम्प्रदायों की संख्या चार तक सीमित करने का संकीर्ण प्रयास किया है।
- पद्मपुराण के साथ-साथ एक दो गौड़ीय ग्रन्थों में भी इन श्लोकों को घुसाया गया है। ध्यान से विवेचना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह घुसाए गये हैं - मौलिक नहीं हैं।
- अपने प्राचीन गौड़ीय-ग्रन्थ श्रीचैतन्य चरितामृत या श्री चैतन्य भागवत या सन्दर्भ में कहीं भी किसी को 'माध्वगौड़ेश्वराचार्य' नहीं लिखा है। जबकि 'उड़िया भक्त' 'गौड़ीया भक्त' अनेक स्थानों पर आया है।
- यह श्लोक तत्कालीन प्रतियों में था ही नहीं-मौलिक नहीं है अन्यथा श्रीजीव आदि गोस्वामिगण भी इसका उल्लेख करते और निरसन करते अथवा ठीक होता तो समर्थन करते।
- जैसे 400 वर्ष पूर्व कम्यूटर था ही नहीं तो-कैसा उसका समर्थन या निरसन। उसका उल्लेख ही नहीं है। उल्लेख न होने का कारण उसकी अवस्थिति न होना ही है।

प्रवर्तक

- चार सम्प्रदायों का नाटक रचने वाले कुछ लोग सम्प्रदाय-प्रवर्तक श्रीनारायण को मानते हैं। उनके अनुसार श्रीनारायण द्वारा ही किसी सम्प्रदाय का प्रवर्तन हो सकता है।
- यदि ऐसा है तो 'श्रीनारायण' तो एक हैं-सम्प्रदायें चार कहाँ से हो गयीं।
- स्पष्ट है एक श्री से हुयी। एक सनक से हुयी। तो नारायण कहाँ हैं प्रवर्तक? श्री हैं। ब्रह्मा हैं। सनक आदि हैं।
- इनके पृथक्-पृथक् मत हैं, दर्शन हैं : पृथक् सम्प्रदाय हैं। अन्य कोई और पृथक् मत होंगे तो और सम्प्रदाय भी पृथक् बन जाएँगी-यह स्वतः सिद्ध है।
- इसी प्रकार श्रीगोविन्द-भाष्य की रचना हुयी और एक पृथक् मत स्थापन हुआ। एक सम्प्रदाय और हो गयी। श्रीहरिवंश ने एक मत स्थापित किया एक और सम्प्रदाय हो गयी। श्रीरामानन्द ने एक और मत प्रचारित किया और एक सम्प्रदाय हो गयी, आदि आदि।
- अनेक मत-अनेक सम्प्रदाय ही विधि-शास्त्र-न्याय सम्मत है। अनेक मत हों सम्प्रदाय एक या चार न्याय सम्मत नहीं है। निरी मूर्खता है।
- किसी मत एवं सम्प्रदाय के आचार्य सन्त हैं, विद्वान् हैं, भगवद्-शक्ति पुष्ट महापुरुष हैं, कृपापात्र हैं जो भी हैं-पूज्य हैं, सम्मानीय हैं।
- वे हम जैसे साधारण जीव नहीं हैं। उनमें विशेष शक्ति का विकास है, जिससे उन्होंने एक मत की स्थापना की और एक विशाल समुदाय ने उसे माना। हमारी-आपकी बात अपने घर के लोग या दस बीस लोग भी नहीं मानते हैं।
- विशेषकर श्रीचैतन्य या गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक तो स्वयं महाप्रभु श्रीचैतन्य हैं। श्रीचैतन्य हैं 'कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं' श्रीराधाकृष्ण मिलित स्वयं श्रीव्रजेन्द्रनन्दन और व्रजेन्द्रनन्दन के एक विलास रूप हैं-श्रीनारायण। श्रीनारायण रूप में वे लक्ष्मी द्वारा चरणवंदित होते हैं और कृष्ण रूप में स्वर्ण रेखा रूप में लक्ष्मी को वक्षस्थल पर धारण करते हैं।
- तो जब नारायण द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायें मान्य हैं तो कलियुग में स्वयं श्रीचैतन्य द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय के लिए माध्व या किसी और की क्या आवश्यकता है? इसकी मान्यता या मौलिकता में क्या कमी रह जाती है।

परम्परा

- श्रीनारायण से प्रारम्भ होकर अपने-अपने गुरुदेव तक रामानुज, निम्बार्क, श्री, रुद्र की परम्परा पहुँचती है।
- श्रीकृष्ण-ब्रह्मा-नारद-वेदव्यास मध्वाचार्य एवं उसके बाद अपने-अपने गुरुदेव तक माध्व सम्प्रदाय की परम्परा पहुँचती है।
- इसी प्रकार-व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण स्वरूप श्रीचैतन्य महाप्रभु-से प्रारम्भ होकर हमारे-हमारे गुरुदेव तक गौड़ीय या चैतन्य सम्प्रदाय की परम्परा पहुँचती है।
- श्री मध्वाचार्य परम्परा की उपाधि 'तीर्थ' है। पुरी नहीं।
- महाप्रभु के दीक्षागुरु श्री ईश्वर 'पुरी' हैं। तीर्थ नहीं।
- महाप्रभु के संन्यास गुरु श्री केशव 'भारती' हैं। तीर्थ नहीं।
- श्रीचैतन्य 'केशव भारती' के संन्यास शिष्य थे। लेकिन चैतन्य चरितामृत में अध्ययन करें तो श्रीमहाप्रभु ने ही पहले श्रीभारती को मन्त्र सुनाया फिर वही मन्त्र भारती ने महाप्रभु को प्रदान कर 'दीक्षा-लीला' सम्पूर्ण की है।
- ईश्वर पुरी ने भी मन्त्र के समय स्पष्ट कहा कि 'तुम साक्षात् ईश्वर हो जैसा आदेश करो मैं तैयार हूँ। मन्त्र क्या प्राण भी देने को तैयार हूँ।'
- पूर्व में ईश्वर पुरी ने अनेकों दिन महाप्रभु से श्रीकृष्ण लीला कथा श्रवण भी की थी।
- श्रीचैतन्य ने लीलावशतः श्रीमाधवेन्द्र पुरी के शिष्य ईश्वर पुरी से दीक्षा अवश्य ली। लेकिन सम्प्रदाय प्रवर्तन महाप्रभु से ही प्रारम्भ हुआ।
- मायावाद का निरसन करते हुए महाप्रभु ने ही गुरु स्वरूप श्रीमाधवेन्द्र पुरी, श्रीईश्वर पुरी एवं प्रकाशानन्द, सार्वभौम भट्टाचार्य आदि अनेक मायावादियों को अपने मत और उपासना से प्रभावित कर अपनी ओर मोड़ा। और नवीन गौड़ीय मत व गौड़ीय या चैतन्य सम्प्रदाय की स्थापना की।
- महाप्रभु से पूर्व मायावाद का बोलबाला था। वैष्णव मत का स्थापन महाप्रभु ने ही किया।
- और महाप्रभु के मत-सिद्धान्त को व्यवस्थित रूप देकर प्रचारित किया श्रीरूप-सनातन एवं विशेष कर परम तीक्ष्ण बुद्धि व प्रतिभावान श्रीजीव तथा अन्य गोस्वामिपाद ने।

नवीन-सम्प्रदाय

- महाप्रभु श्रीचैतन्य ने श्रीईश्वर पुरी से दीक्षा प्राप्त की।
- महाप्रभु श्रीचैतन्य ने श्रीकेशव भारती से संन्यास दीक्षा प्राप्त की।
- ये दोनों श्रीगुरुदेव कहीं न कहीं किसी न किसी मत या सम्प्रदाय के अनुगत तो थे ही।
- क्षणभर के लिये यह मान भी लिया जाय कि ये दोनों माध्व के अन्तर्गत ही दीक्षित थे।
- महाप्रभु ने माध्वमत का खण्डन करके अपना एक मत-प्रवर्तन किया। मायावादियों का उद्धार किया। रागानुगा-प्रेम मार्ग का उद्घोष किया।
- 'कलौ केशव कीर्तनात्' को स्थापित किया। आचरण किया। अपने मत में लोगों को डुबाया। उन्हें उस मत की पूर्णता से परिचित कराया। माध्व मत का खण्डन किया। अचिन्त्य भेदाभेद की स्थापना की।
- लोगों को ही नहीं, अपने श्रीगुरुदेव को भी, पूज्य जनों को भी अपने मत को समझाया। उन्होंने स्वीकार किया। वे उस मत पर चले भी।
- जब मत बदल गया तो सम्प्रदाय का बदलाव स्वतः ही हो गया। अब वे माध्व सम्प्रदायी कहाँ रहे। अब तो वे चैतन्य सम्प्रदायी हो गये।
- श्रीनन्दबाबा परम्परा से इन्द्र पूजा करते आ रहे थे। श्रीकृष्ण ने इन्द्रपूजा बन्द करायी। गोवर्धन-पूजा प्रारम्भ करायी।
- सबने इन्द्र पूजा छोड़कर सहर्ष 'गिरिपूजा' की, करायी। इन्द्रपूजा बन्द हो गयी।
- अब हम नन्दबाबा के परिवार को 'इन्द्र-पूजक' कहेंगे या 'गिरि-पूजक'?
- कभी थे-इन्द्र पूजक। आज 'गिरि पूजक' हैं। महाप्रभु से पूर्व के लोग होंगे माध्व सम्प्रदायी। हम तो विशुद्ध रूप से 'गौड़ीय सम्प्रदायी' या 'चैतन्य सम्प्रदायी' ही हैं।
- मध्वानुगत्य मानने वाले माध्व सम्प्रदायी हैं- इसमें कोई भ्रम या संशय नहीं है।
- श्री चैतन्यानुगत्य मानने वाले श्रीचैतन्य या गौड़ीय सम्प्रदायी हैं- इसमें भी कोई संशय नहीं है।
- लेकिन ये 'माध्व-गौड़ीय' या 'माध्व-गौड़ेश्वर' शब्द किसका आनुगत्य इंगित करता है-यह भ्रमात्मक है।

सम्प्रदाय

- 'सम्प्रदाय' शब्द एक मत विशेष को मानने वाले लोगों के समूह को कहते हैं। विरोधी मतों को मानने वाले 'एक सम्प्रदायी' या एक दूसरे के अन्तर्भुक्त नहीं हो सकते हैं।
- श्रीमध्वाचार्य 'भेदवादी' या 'द्वैतवादी' थे। जबकि श्रीचैतन्य महाप्रभु का दार्शनिक मत-'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' है।
- माध्वमत में सर्वोपरि सर्वश्रेष्ठ भक्त ब्रह्मा हैं और गोपियाँ 'वेश्या' हैं।
- गौड़ीय मत में सर्वश्रेष्ठ भक्त प्रेमभक्ति प्राप्त गोपियाँ हैं और विशेषतः व्रजलीला में ब्रह्मा एक अपराधी हैं जिन्होंने भगवान् की ब्रज लीला में व्यवधान पहुँचाया।
- श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की अनेक स्तुतियाँ हैं। सभी के मध्य या अन्त में श्रीकृष्ण ने कुछ न कुछ अवश्य कहा है जबकि 'ब्रह्म-स्तुति' में ब्रह्मा स्तुति करते रहे हैं। श्रीकृष्ण ने बीच में तो क्या अन्त तक भी 'हूँ' 'हाँ' कुछ भी नहीं कहा है। और ब्रह्मा चले गये।
- एक सम्प्रदाय का एक अपना भाष्य होता है। मध्वाचार्य का भाष्य है। था। फिर चैतन्य सम्प्रदाय के भाष्य-'गोविन्द भाष्य' की रचना साक्षात् श्रीगोविन्ददेव जी ने क्यों करायी।
- चलिए! परिस्थितिवश यह मान लिया जाय कि 'गौड़ीय सम्प्रदाय' का जब तक कोई भाष्य नहीं था; तब तक वह किसी के अन्तर्गत थी। जब अपना पृथक् भाष्य हो गया तो पृथक् सम्प्रदाय हो गयी न। किसी के अन्तर्गत कहाँ रही। और क्यों रहे ?
- अपना पृथक् भाष्य होते हुए अपने विरोधी माध्वमत के आनुगत्य को स्वीकार करके हम महा-अपराध कर रहे हैं। दुःख का अनुमान कीजिये 'गोपी प्रेम की ध्वजा' का मन्तव्य रखने वाले हम गौड़ीय अपने आपको 'गोपियों को वेश्या' कहने वाले! माध्वमत के अन्तर्गत मानते हैं।
- माध्वमत का परम पुरुषार्थ-पंचविधा मुक्ति है। हमारे गौड़ीय सिद्धान्त में 'मुक्ति और भुक्ति' दोनों को पिशाची कहा गया है और परम पुरुषार्थ है-'प्रेम' या प्रेमाभक्ति।
- गोपियों को 'वेश्या' कहने वाले माध्वमत को अपना स्रोत मानने वाले अपने-आपको माध्वगौड़ीय वैष्णवाचार्य लिखने वाले हों या गौड़ीय हों, दोनों ही निर्विवाद रूप से श्रीजीव गोस्वामी द्वारा प्रवर्तित महाप्रभु श्री चैतन्य के 'अचिन्त्य भेदाभेद' नामक दार्शनिक सिद्धान्त को मानते हैं-इसमें कहीं भी किसी का मतभेद नहीं है।

- इन्हीं जीव गोस्वामी ने सन्दर्भ में 12 एवं अनेक सम्प्रदाय होने की बात स्पष्ट लिखी है। श्रीजीव की इस बात को हम क्यों नहीं मानते हैं।
- चार सम्प्रदाय वाला श्लोक उस समय पद्मपुराण में नहीं था, यह श्लोक प्रक्षिप्त है। बाद में घुसाया गया है। श्रीजीव के समय यदि यह श्लोक होता तो श्रीजीव अवश्य पूर्वपक्ष उठाकर या तो इसका निरसन करते या इसे स्थापित करते। यह श्लोक उस समय था ही नहीं और चार सम्प्रदाय की अविवेकपूर्ण अवधारणा तिल मात्र भी नहीं थी–अतः तत्कालीन साहित्य में कहीं भी चर्चा नहीं मिलती है। यह तो इधर के कुछ वर्षों में प्रचारित हुआ और इसका विरोध भी हुआ। निरसन भी हो गया।

कुल मिलाकर

- सम्प्रदाय–यानि एक मत विशेष को मानने वाले लोगों का समूह।
- दो मत; विशेषकर विरोधी मतों को मानने वाले एक सम्प्रदाय में नहीं हो सकते।
- 'गोपी' को वेश्या कहने वाले सम्प्रदाय के अन्तर्गत नहीं हो सकते; 'गोपी प्रेम की ध्वजा' कहने वाले।
- अनेक संस्थानों द्वारा श्रद्धा–पूर्वक, 'विद्यावाचस्पति', 'भक्ति–सिद्धान्तरत्न', 'भागवतभूषण' 'भक्तिभूषण' 'डी. लिट्', 'रविन्द्र पुरस्कार' आदि उपाधियों से विभूषित परमविद्वान् श्रीराधागोविन्दनाथ महाशय ने मध्वानुगत्य को सिरे से नकारा है।
- 'माध्वगौड़ेश्वराचार्य' शब्द पूरे गौड़ीय साहित्य में कहीं भी नहीं है। जबकि 'गौड़ीया' और 'उड़िया' शब्द आया है।
- कुछ लोग आज भी इस शब्द का अर्थ व मतलब जाने बिना इसका प्रयोग करते हैं। करें। हमें क्या आपत्ति है।
- चार नहीं। अनेक हैं सम्प्रदाय। राधावल्लभ, सखी, रामानन्द, वल्लभ, शुक भी पृथक् सम्प्रदाय हैं। 'नानक' को कहां से जोड़ेंगे।
- मत अलग होने पर सम्प्रदाय अलग होती है अन्यथा चार या अनेक की भी क्या आवश्यकता है। एक ही काफी है।
- जितने मत : जितने दर्शन : उतनी सम्प्रदाय। यही उचित है।
- मध्व भाष्य होते हुए गोविन्द भाष्य की क्या आवश्यकता थी।

- श्रीनारायण से सम्प्रदाय का प्रचलन है। श्रीनारायण श्रीकृष्ण का ही विलास हैं।
- श्रीचैतन्य स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण हैं तो इनसे सम्प्रदाय का प्रवर्तन क्यों नहीं हो सकता ?
- गौड़ीय सम्प्रदाय–देश पर आधारित नाम है। चैतन्य–सम्प्रदाय, प्रवर्तक पर आधारित नाम है।
- जब स्वयं चैतन्य हैं तो फिर और किसी भी भगवद्स्वरूप से सम्बद्धता की आवश्यकता कहाँ है ?
- चैतन्य चरितामृत, चैतन्य भागवत में कहीं भी किसी के नाम के साथ 'माध्वगौड़ेश्वर' नहीं जुड़ा है।
- स्वयं बलराम जी ने स्वप्न में श्री लक्ष्मीपति को मन्त्र दिया–वही मन्त्र उन्होंने श्री नित्यानन्द को दिया। वही माधवेन्द्र पुरी को। माधवेन्द्र से ईश्वरपुरी से महाप्रभु से.............
- लक्ष्मीपति पुरी के शिष्य नित्यानन्द एवं माधवेन्द्र पुरी। माधवेन्द्रपुरी के शिष्य ईश्वर पुरी, इनके शिष्य महाप्रभु चैतन्य।
- केशव भारती–संन्यास गुरु। स्वयं महाप्रभु ने पहले केशव भारती को मन्त्र दिया–वही केशव भारती ने महाप्रभु को दिया। तो हुए न महाप्रभु–सम्प्रदाय प्रवर्तक।
- मध्वाचार्य तीर्थ थे। गौड़ीय सम्प्रदाय में कोई तीर्थ नहीं हैं। पुरी हैं। संन्यासी–भारती हैं।
- व्रज के सन्त में तीनों गुरुओं का विस्तृत चरित्र आस्वादनीय है।
- श्रीभगवान् ही आदि सम्प्रदाय–प्रवर्तक होते हैं–
- नारायण–सनक............निम्बार्क।
- नारायण–ब्रह्म..............माध्व।
- नारायण–श्री................ रामानुज।
- नारायण–रुद्र...............विष्णुस्वामी।
- श्रीनारायण (श्रीकृष्ण के विलास)=श्रीकृष्ण=श्रीचैतन्य (स्वयं कृष्ण)–केशवभारती–श्रीचैतन्य–श्रीरूप श्री जीव............ इसमें क्या कमी है ?
- निम्बार्क–श्रीकृष्ण के विलास नारायण से। माध्व–श्रीकृष्ण के विलास नारायण से। रामानुज श्रीकृष्ण के विलास नारायण से। विष्णुस्वामी श्रीकृष्ण के विलास नारायण से।

- गौड़ीय–श्रीकृष्ण के विलास से नहीं; साक्षात् श्रीकृष्णचैतन्य से। परम्परा में कहाँ बाधा है।
- फिर भी कोई मध्वानुगत्य मानता है–माने। हमें कोई आपत्ति नहीं।
- हम मध्वानुगत्य नहीं मानते। हम चैतन्यानुगत्य मानते हैं–किसी को क्या आपत्ति है।
- सारे के सारे गौड़ीय मठ या गौड़ीय मिशन हैं। माध्वगौड़ीय मठ नहीं हैं।
- गोपियों को वेश्या कहने वाले का आनुगत्य स्वीकार करके क्या हम श्रीरूपानुग रागानुगा भक्ति में प्रविष्ट हो सकते हैं? कभी नहीं। जिस प्रकार मायावादी कृष्ण अपराधी हैं। उसी प्रकार गोपियों को वेश्या कहने वाले भी कृष्ण के अपराधी हैं। सम्प्रदाय प्रवर्तक नहीं।
- श्रीचैतन्य–श्रीनारायण के समान ही नहीं उनसे अधिक महत्वशाली हैं। परब्रह्म व्रजेन्द्रनन्दन ही साक्षात् श्रीकृष्णचैतन्य हैं। जब नारायण सम्प्रदाय प्रवर्तक हो सकते हैं तो श्रीचैतन्य भी सम्प्रदाय प्रवर्तक हो सकते हैं। हैं। निश्चय हैं।
- श्रीराधाकुण्ड से प्रकाशित वैष्णव व्रतोत्सव सर्वमान्य है और 70 वर्षों से प्रकाशित हो रहा है उसकी प्रकाशक संस्था का नाम है 'श्रीश्रीगौड़ेश्वर वैष्णव सम्मिलनी' माध्वगौड़ेश्वर–वैष्णव सम्मिलनी नहीं है।
- गुरुदेव ने तो धक्का दिया ही। चेला भी धक्का मार गया। ऐसे वैष्णव वेशधारी कपटी क्या जानें कि एक चिड़िया के मानने या न मानने पर 'आचार्य'–आचार्य ही रहता है, न्याय–न्याय रहता है।

और कोई समझे न समझे
हमको इतनी समझ भली है।
नारायण से श्रेष्ठ प्रवर्तक
हमरे श्रीचैतन्य बली हैं।।

● ● ●

सन् 1908 में प्रकाशित श्रीहरिभक्तिविलास ग्रन्थ की भूमिका के पृष्ठों में भी 'गौड़ीय एवं 'चैतन्य सम्प्रदाय' शब्दों का प्रयोग हुआ है

आचार्य्य (श्रीहरिभक्तिविलासकार) प्रणीत होने के कारण भाष्यव्याख्या ही सर्व्व-प्रकार से आदरणीया है। अन्यकृत व्याख्या यदि आचार्य्य-व्याख्यानुवर्त्तिनी होवे तो—ग्रहण योग्य है, वरने अग्राह्य। जैसे कि—वेदान्तादि दर्शन-शास्त्रों में विविध आचार्य्यों की व्याख्या रहने से भी अपनी अपनी सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक आचार्य्य-गणों की व्याख्या ही भ्रमप्रमादादि दोषरहित होने के कारण आदरणीया, उसी को ग्रहण करके दूसरे के मत में दोष लगाया जाता है; उसी तरह गौड़ीय सम्प्रदाय के आचार्य्य (श्रीहरिभक्तिविलासकार) "भान्यर्कोदयमारभ्य" इत्यादि वचनों से "आदित्येन जया" इत्यादिवचनों की जैसी व्याख्या की है, वही नृसिंहपरिचर्य्याकार का आन्तरिक अभिप्रायस्वरूपा और गौड़ीय-वैष्णवों की परम-आदरणीया है।

नृसिंहपरिचर्य्याकार का अभिप्राय अपने ग्रन्थ (नृसिंहपरिचर्य्या) से व्याख्याग्रन्थ (श्रीहरिभक्तिविलास) में ही अधिक प्रकाश हुआ है; इसी लिये इस ग्रन्थ को अधिक प्रमाणस्वरुप समझना चाहिये। नृसिंहपरिचर्य्या के जो सब जटिल (कठिन) वाक्य सहज में नहीं समझ में आते हैं, वही सब वाक्य इस ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ में समझा

• • •

गौड़ीय श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य-देव की सम्प्रदाय के वैष्णव-गण, सनातन्यमवस्थापक ग्रन्थ रहन स भी उषा·
सना-घटित और आश्रमोचित निखिल कर्म्मों को अच्छी तरह से सम्पादन करने की इच्छा से, सब से उत्तम
"श्रीमद्धरिभक्तिविलास" ग्रन्थ का ही अवलम्बन करके नित्य-नैमित्तिक देव-पित्रादि कार्य्यों का अनुष्ठान करते
हैं। जो "श्रीहरिभक्तिविलास" ग्रन्थ सर्व्वाश्रमी भगवद्भक्तों का आवश्यकीय (जरूरी) नित्य-नैमित्तिकादि कार्य
देखने का स्वच्छ (साफ) दर्पणस्वरूप है; अतएव सर्व्वाश्रमी वैष्णवों को, विशेष करके गृहस्थ वैष्णवों को देवता के तुल्य
इस ग्रन्थ को अपने अपने घर में रखकर पूजा करनी उचित है। षट्-संख्यक (छै) आचार्यों के बीच में इस ग्रन्थ के
प्रथम निबन्धकर्त्ता (इकट्ठे करने वाले) श्रीमद्गौड़ेश्वर-"श्रीचैतन्य महाप्रभु" के सम्प्रदाय के पूर्वतम आचार्य्य सद्दीप,
चरणानुचर पूज्यपाद "श्रीमद्गोपाल भट्ट गोस्वामी"; इन ने पहिले संक्षेप से इस ग्रन्थ को निबद्ध करके, उक्त
सम्प्रदाय के आचार्य्य-शिरोमणि सर्व्वज्येष्ठ पूज्यपाद "श्रीमत् सनातन गोस्वामी" को शोधन करने के लिये अर्पण
किया; पीछे इन (श्रीसनातन गोस्वामी) ने इस ग्रन्थ को बढ़ाकर अपनी टीका में वैष्णव सिद्धान्तों का आवि-
ष्कार करके, कलि-मलकलुषित-चित्त मनुष्यों का परम उपकार किया है। प्रतिष्ठात्यागी महात्मा श्रीसनातन
गोस्वामिपाद ने ग्रन्थ के प्रथम निबन्धकर्त्ता के नाम से ही इस ग्रन्थ का प्रचार किया है। इस ग्रन्थ में ग्रन्थ·
कर्त्ता का जैसा हरिभक्तिपरायणत्व और असाधारण पाण्डित्य प्रकाशित हुआ है, वैसा और किसी निबन्ध-
ग्रन्थ में भी दिखाई नहीं देता।

इस ग्रन्थ में—श्रीगुरुपादाश्रय, गुरुशिष्य-परीक्षा, दीक्षा, वैष्णवगणों की नित्य पूजादि—अवश्यकर्त्तव्य नित्य-
कृत्यादि, श्रीएकादशी, श्रीजन्माष्टमी-व्रत प्रभृति मास-कृत्यानुष्ठान, श्रीमूर्त्ति-निर्म्माण, तत्प्रतिष्ठादि—उपासना
सम्बन्धीय कामों की विधि (ग्रन्थ के सूची-पत्र में सम्पूर्ण विवरण देखिये) यथाक्रम से संग्रह करके ग्रन्थ-कर्त्ता ने
वैष्णव-समाज का महोपकार साधन किया है।

काल में यह ग्रन्थ—कलकत्ता प्रभृति बङ्गदेश में बङ्गला अक्षरों में बहुत छपा है, परन्तु देवाक्षर में (हिन्दी
अक्षरों में) अभी तक कहीं भी किसी ने नहीं छपवाया है, इसी लिये दरिद्र और क्षुद्रमति होकर भी मैंने—श्रीचैतन्य-
सम्प्रदायभुक्त सदाशय श्रीहरिभक्तिपरायण वदान्यप्रवर छत्रपुराधीश्वर श्रील श्रीमन्महाराज—"विश्वनाथसिंह"
बाहादुर के सम्पूर्ण अर्थ-साहाय्य और उत्साह से पुराने पुराने बहुत से ग्रन्थ संग्रह करके उसी सम्प्रदाय
के पण्डित-द्वारा मूल-संशोधन कराकर, सर्व्वसाधारण का सहज में बोध होने के लिये मूल-टीका के अनुसार
भाषा-टीकासहित यह ग्रन्थ प्रकाशित किया है। भाषा—अनुवादक ने भ्रमवशतः बहुत सी जगह अनुवाद छोड़ दिया

सन् 1908 में प्रकाशित श्रीहरिभक्तिविलास ग्रन्थ की भूमिका का वह पृष्ठ जिसमें 'चैतन्यसम्प्रदाय' शब्द का प्रयोग हुआ है

श्रीराधाकुण्ड से प्रकाशित व्रतोत्सव पत्र जिसमें 'गौड़ेश्वर' शब्द का प्रयोग विगत ९४ वर्षों से हो रहा है। कहीं भी 'माध्व' नहीं है।

❋ श्रीश्रीकृष्णचैतन्यः शरणम् ❋

कलियुगपावनावतार-स्वभजनविभजन-प्रयोजनावतार-श्रीश्रीभगवच्छ्री
कृष्णचैतन्य-चरणानुचर-विश्ववैष्णवराजसभासभाजनभाजन
श्रीमद्रूप-सनातन-गोपालभट्ट-रघुनाथभट्ट-रघुनाथदास-
श्रीजीवगोस्वामिचरणानुमतवैष्णवस्मृति
श्रीश्रीहरिभक्ति-विलास
सम्मत

श्रीश्रीराधाकुण्ड-स्थित
श्रीश्रीगौड़ेश्वर-वैष्णव-सम्मिलनी

द्वारा प्रकाशित
श्रीश्रीब्रजमण्डलस्थ-सर्ववैष्णव-जनानुमोदित

•••

श्रीश्रीराधा-मदनगोपालदेवो जयति ।

श्रीश्रीहरिभक्तिविलासः।

श्रीमत् श्रीकृष्णचैतन्य-चरणसरसीरुह-चञ्चरीक गौड़ेश्वराचार्य—
श्रीमद्गोपालभट्टगोस्वामि विरचितः।

सन् 1908 में प्रकाशित श्रीहरिभक्तिविलास का वह मुखपृष्ठ, जिस पर श्री गोपालभट्ट गोस्वामी के लिये ''गौड़ेश्वराचार्य'' शब्द का प्रयोग हुआ है।

श्रीमन्नित्यानन्दप्रभुवंशावतंस नवद्वीपधामवासी
प्रभुपाद श्रीप्राणगोपाल गोस्वामी
शिष्यानुशिष्य परमभागवत

श्रीराधागोविन्द नाथ

पराविद्याचार्य, विद्यावाचस्पति, भागवतभूषण
भक्तिसिद्धान्तरत्न, भक्तिभूषण, भक्तिसिद्धान्त भास्कर